नाम का हीरा

ज्ञानी संत सिंघ मसकीन के लेखों की पुस्तक



१ ओं सतिगुरु प्रसादि ॥

नाम का हीरा

ज्ञानी संत सिंघ मसकीन के
लेखों की पुस्तक

संग्रह कर्ता :
अमृत मोहन सिंघ

प्रकाशक :
भा. चतर सिंघ जीवन सिंघ
अमृतसर

NAAM KA HEERA
Edited by : Amrit Mohan Singh

ISBN : 81-7601-856-2

प्रथम संस्करण : जून 2007

भेटा : 80-00

प्रकाशक :

भा. चतर सिंघ जीवन सिंघ

बाज़ार माई सेवा, अमृतसर (पंजाब)

टैली-फैक्स : (0183) 2542346, 2547974, 2557973
email : csjs@vsnl.com; csjsexports@vsnl.com
website : www.csjs.com

मुद्रक :

जीवन प्रिंटर्ज़, अमृतसर।

विषय-सूची

दो शब्द

दास मसकीन जी की कथा बहुत कम उम्र से ही सुनता आ रहा है। उस समय मसकीन जी हमारे शहर लुधियाना में गु: कलगीधर सिंघ सभा में कभी-कभार कुछ दिन कथा करने आते थे। मैं उनकी कथा से बहुत प्रभावित था और मैं अक्सर उनकी कथा टेप रिकार्डर में रिकार्ड कर लेता था क्योंकि कैसटें हर वक्त सुनी नहीं जा सकती थीं और कैसटें खराब हो जाने का डर था। वैसे तो उनकी हर कथा में बहुत ही अनमोल विचार होते हैं। एक दिन वैसे ही मेरे मन में ख्याल आया कि उनकी कथा में से कुछ खास-खास नुक्ते नोट कर लिए जाएँ। इस तरह मैंने कुछ नुक्ते नोट किए, कुछ नुक्ते लिखते-लिखते लेख की शक्ल अखत्यार कर गए। जैसे कि मैंने उनकी कथा में से 'जपु' संबंध में सुना था और फिर कोई और कैसट में 'जपु' के बारे में कुछ प्रकाश था, उस में से कुछ लिखा, फिर उनकी ही किताबों में से जो उस विषय से संबंधित विचार थे, वह भी इकट्ठे किए। गुरु रामदास जी महाराज ने खुद मेहर करके दिशा दी और वह जो नुक्ते, वह जो विचार जो एक विषय से संबंधित थे, लिखे और यह लेख की शक्ल अखत्यार कर गए। काम तो बहुत ही मुश्किल था, मगर जैसे-जैसे टाईम मिलता गया, मैं खुद के पढ़ने के लिए गुरु कृपा से लिखता गया और जब कुछ लेख तैयार हो गए और अचानक मेरे मन में ख्याल आया कि यह मसकीन जी के विचार छप जाएँ ताकि और संगतें भी लाभ ले सकें, मगर इस तरह छपवाने के बारे में मुझे किसी भी तरह की जानकारी नहीं थी। इस दरम्यान संयोगवश मेरी मसकीन जी से कुछ निकटता हो गई और एक दफा मैंने मसकीन जी से इस बारे जिक्र किया और दिल की इच्छा प्रकट की इनको छपवाने के बारे में। मुझे मसकीन जी ने कहा कि कोई बात नहीं, जब कभी अमृतसर जाएँगे, तब वहाँ ले आना, छपवा देंगे। उसके बाद मैं मसकीन जी से अमृतसर में मिला

भी था मगर इस बारे बात न कर सका, क्योंकि मैं अभी और भी लिख रहा था। उसके बाद मैंने कुछ और भी लेख इकट्ठे किए और फिर अब पुनः मेरे मन में इनको छपवाने का विचार आया और जब मैं दरबार साहिब अमृतसर माथा टेकने गया तब मैंने प्रभजीत सिंघ, भाई चतर सिंघ जीवन सिंघ के साथ बात की तो उन्होंने बड़ी फराखदिली से कहा कि लायो हम छाप देते हैं। मैं इनका बहुत आभारी हूँ।

दूसरा यह जो लेख हैं, यह मैंने टेप-रिकार्डर से सुन कर और मसकीन जी की पहले लिखी किताबों में से नुक्ते एकत्र करके लिखे हैं। जो गुरुबाणी की उदाहरणें हैं, जो मुझे पूरी तरह समझ में आईं, वह खुद की तरफ से शुद्ध करके लिखी हैं। फिर भी कमियाँ रह गई होंगी। मैं कोई लेखक नहीं हूँ, मैं तो संगतों के चरणों की धूल के बराबर भी नहीं हूँ। यह मसकीन जी के विचार लिखते अनेक गलतियाँ मुझ से हो गई होंगी। उसके लिए मैं दोनों हाथ जोड़ कर मुआफी माँगता हूँ। आशा है संगतें लाभ प्राप्त करेंगी।

दास :
अमृत मोहन सिंघ
लुधियाना
फोन : 0161-2723738
मोबाइल : 98888-47244

नाम का हीरा

खोजा तो आदमी ने बहुत कुछ है और खोजने वाली वृत्ति भी प्रभु ने मनुष्य को दी है। इसलिए आदमी ने सागर के गहरे तल से मोती ढूँढे हैं, पहाड़ों को खोद कर आदमी ने हीरा, सोना, चाँदी, ताँबा ढूँढा है, मगर जीवन को खोज कर परमानंद प्रगट करना मनुष्य भूल गया है कि वह इस जीवन की खान में है। काश कि यह ढूँढे और खोजे।

हर खोजहु वडभागीहो

गुरु रामदास जी महाराज कहते हैं कि ऐ भाग्यशालियो ! सागर में से तूने बहुत कुछ ढूँढ लिया है, मगर जीवन रूपी सागर में तूने डुबकी नहीं लगाई। इस में भी बहुत कुछ पड़ा है और ऐसा हीरा पड़ा है। जिसके मिलते जगत् के सारे हीरे फीके पड़ जाएँगे। अभी उस हीरे का हमें पता नहीं। सत्संग की महिमा इसलिए है कि आदमी को उस गुप्त नाम, उस गुप्त रस का पता चल सके फिर उसकी प्यास भी पैदा हो जाए ताकि उसकी प्राप्ति के लिए चेष्टा करे, उद्यम करे। सत्संग की इतनी महानता है। नाम रूपी हीरे का पता चल सके, यह सत्संग है, सत्संग के बिना पता नहीं चलता। आम आदमिओं को कोई बोध नहीं है कि नाम भी कोई रस है, परमात्मा भी कोई आनंद है। पदार्थ का पता है, परमात्मा का पता नहीं। संसार का पता है, निरंकार का पता नहीं।

इसलिए ही भक्त कबीर जी दुखी होकर कहते हैं, मेरे पास एक हीरा है और मैं चाहता हूँ कि यह दूसरों के पास भी हो और किसको दूँ। मगर कबीर जी कहते हैं कि एक मजबूरी है कि बाजार ही नहीं है जहाँ बैठ कर मैं यह हीरा बेचूँ। बहुत बहुमूल्य श्लोक है यह भक्त कबीर जी का :

राम पदारथु पाइ कै कबीरा गांठि न खोल्ह॥
नही पटणु नही पारखू नही गाहकु नही मोलु॥

(अंग १३६५)

कबीर जी कहते हैं 'नही पटणु' कोई बाज़ार ही नहीं है, मैं कहाँ बेचूँ। बाज़ार तो हैं, कहीं कपड़ा बिकता है, कहीं ईंटें बिकती हैं, कहीं लकड़ियाँ बिकती हैं और कहीं सब्ज़ी मण्डी है और कहीं कोई अन्य चीज़ों का बाज़ार है। मगर जो वस्तु मेरे पास है, इसका कोई बाज़ार ही नहीं है। आगे कहते हैं कि मुझे मजबूरन वहीं बैठ कर बेचना पड़ता है, यहाँ कपड़ा बिकता है, लकड़ियाँ और पत्थर बिकते हैं। व्यापारी आते हैं वहाँ कपड़े के, लकड़ियों के, पत्थर के, फ्रूट के, क्योंकि बाज़ार ही इन चीज़ों के हैं इसीलिए व्यापारी भी इन्हीं वस्तुओं के आते हैं। आम देखने में आया है कि गुरुपर्व मनाया जा रहा होता है गुरु नानक देव जी का, 'आसा दी वार' का कीर्तन हो गया है और शब्द की विचार हो गई है, मगर आम लोगों की रुचि होती है कि कोई स्पैशल प्रोग्राम नहीं हुआ, कोई टोए-टप्पे, कोई गीत-संगीत। आसा दी वार और शब्द की विचार तो वैसे ही है, इसलिए एक बात स्पष्ट हो गई है, जितना समूह है, अगर सभी की रुचि इस ढंग से हो, तो बाज़ार नहीं है।

कबीर जी कहते हैं कि पहले तो बाज़ार ही नहीं है और अगर मैं किसी पराये बाज़ार में बैठ जाऊँ, जहाँ आम वस्तुएँ बिकती हों, राम नाम का हीरा नहीं तो 'नही पटणु नही पारखू' कोई पारखी ही नहीं। पारखी आते हैं वहाँ लकड़ियों के, कोयले के, पत्थर के, कपड़े के, मगर जो वस्तु मेरे पास है, उसका कोई पारखी नहीं है। कबीर जी कहते हैं कि कभी-कभार ऐसा भी हो जाता है कि कोई पारखी भी आ जाता है। उसको मालूम है कि राम नाम क्या है। उसको मालूम है कि जगत् का रस कुछ भी नहीं और इतना मालूम है कि नाम 'रस' उससे ऊँचा है, मगर कबीर जी कहते हैं कि वो ग्राहक नहीं है, खरीददार नहीं है, अभी संसार की पकड़ है। बड़े-बड़े ज्ञानी दार्शनिक मिलते हैं, अर्थ-बोध का भी पता है, बाणी जो कह रही है, उसका भी पता है, मगर जो कुछ कह रही है, उसके खरीददार नहीं हैं। पारखी तो बहुत हैं, कह देंगे कि जहाँ तूने 'सिहारी' (छोटी इ की मात्रा) नहीं लगाई, जहाँ विश्राम नहीं दिया। यहाँ तेरी तरज़-ए-ब्यानी ठीक नहीं है। पारखी

तो बहुत हैं मगर खरीददार नहीं हैं। इसलिए तो कबीर गिला करते हैं कि पहले तो कोई बाज़ार ही नहीं, अगर किसी और बाज़ार में बैठ जाएँ तो कोई पारखी ही नहीं, अगर कोई पारखी आ भी जाए तो वह खरीददार ही नहीं है। और आगे कबीर जी कहते हैं कभी कोई ऐसा खुशकिस्मत दिवस आ जाता है कि कोई खरीददार भी आ जाता है। वह पारखी भी है, वह ग्राहक भी है मगर कहते हैं कि बदकिस्मती है कि वह मूल्य नहीं देना चाहता, 'नही गाहकु नहीं मोलु' इसलिए फिर सौदा नहीं बनता। खरीददार तो है, लेना भी चाहता है मगर बदले में मूल्य नहीं चुकाना चाहता। अमृत का रस मानना चाहता है मगर शराब का रस भी नहीं छोड़ना चाहता। नाम का रस चखना चाहता है, मगर विकारों का रस भी नहीं छोड़ना चाहता। परमात्मा के साथ जुड़ना चाहता है, मगर यारी झूठों की भी नहीं छोड़ना चाहता। मूल्य नहीं चुकाना चाहता।

कबीर जी कहते हैं कि प्रथम तो कोई बाज़ार ही नहीं है। मैं भगवान की बात कहाँ करूँ, कोई सुनने को तैयार ही नहीं है। दस युवक जहाँ बैठे हों, फिल्म अभिनेताओं की चर्चा करेंगे। दस बुज़ुर्ग जहाँ बैठे हों, राजनीति की चर्चा करेंगे हर वक्त। गुरुद्वारे दाखिल होते ही पहले अख़बार ढूँढेंगे। भई पुरखा! पहले कीर्तन सुन ले, कथा सुन ले, फिर पढ़ लेना अख़बार, सारा दिन पड़ा है। अख़बार पढ़ कर जिसने पहले ही अपना मन बिखेर लिया है, अब मुश्किल है इसका मन कीर्तन में लगे। तदुपरांत पढ़ लेना, संसार की बात है, पहले सुबह-सुबह तेरा मन ताज़ा है, शरीर ताज़ा है, निरंकार की बात सुन ले। मगर अब तो सुबह उठते ही नित्तनेम ही अख़बार का है। मैंने बड़े राजनीतिज्ञ देखे हैं अपनी कौम के, हैरानगी हुई। जिनके हाथ में सुबह-सुबह गुटका होना चाहिए था, उनके हाथ में अख़बार ही होती है। उनका ही नित्तनेम करते हैं।

कबीर जी कहते हैं कि मैं कहाँ धर्म की बात करूँ, कोई बाज़ार ही नहीं है, कोई सुनने को तैयार ही नहीं है, अगर मैं बात कर दूँ तो कोई पारखी ही नहीं है, और अगर कोई पारखी आ जाए तो वह खरीददार ही नहीं है, अगर कोई खरीददार भी आ जाए तो वह मूल्य नहीं चुकाना चाहता। मूल्य तो यह मन है। मूल्य तो अपने ये विचार

हैं, मूल्य तो अपना अहंकार है और कोई मूल्य देने को तैयार नहीं। आप इसलिए तो कहते हैं:

राम पदारथ पाइ कै कबीरा गाँठि न खोल्ह॥

किसलिए यह गठरी (पोटली) खोलता है, खुद को कहते हैं, इस में जो कुछ है, उसके यहाँ कोई पारखी नहीं है, कोई खरीददार नहीं है, कोई मूल्य चुकाने को तैयार नहीं है।

भई परापति मानुख देहुरीआ ।।
गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ ।।

हमें यह मनुष्य जन्म बड़ी लम्बी यात्रा के पश्चात् मिला है। यह मनुष्य जन्म परमात्मा से मिलन के लिए है। परमात्मा से मिलन का यह समय है। पत्थर बड़ी लम्बी यात्रा के पश्चात् वनस्पति बनता है। वनस्पति लम्बी यात्रा के पश्चात् पशु-पक्षी बनता है। पशु-पक्षी की लम्बी यात्रा के पश्चात् मनुष्य बनते हैं। पत्थर की बारी है वनस्पति बनने की, वनस्पति की बारी है पशु-पक्षी बनने की, पशु-पक्षी की बारी है मनुष्य बनने की, मगर मनुष्य की बारी है परमात्मा का रूप होने की।

प्राकृतिक नियम मुताबिक पत्थर समय के पश्चात् एक दिन वनस्पति हो जाएगा। वनस्पति आगे पशु-पक्षी की योनि में पड़ जाएगी। पशु-पक्षी भी आखिर एक दिन मनुष्य की योनि में आ जाएँगे, मगर मनुष्य ही सिर्फ आगे नहीं जा सकता। मनुष्य एक चौरस्ते में खड़ा है। मानस जन्म एक चौरस्ता है और मनुष्य दाएँ भी जा सकता है, बाएँ भी जा सकता है, पीछे भी जा सकता है और आगे भी जा सकता है। मनुष्य में यह चारों संभावनाएँ हैं। अगर यह आगे जाए तो प्रभु का रूप हो जाएगा, अगर यह दाएँ जाएगा तो यह देवता हो जाएगा, अगर यह बाएँ जाएगा तो भूत-प्रेत हो जाएगा और अगर यह पीछे जाएगा तो पशु हो जाएगा। अगर यह नहीं गया तो वहीं चौरस्ते में मृत्यु पाकर फिर मनुष्य बनेगा। मरने के पश्चात् फिर मनुष्य बनना, यह तो ऐसे है जैसे कि कोई बच्चा प्रथम कक्षा के पश्चात् दूसरी, तीसरी, चौथी और समय अनुसार परिश्रम करके बी.ए., एम.ए. तक पढ़ जाए और उसके पश्चात् उसे कह दिया जाए कि अब तू फिर प्रथम कक्षा में बैठ। जो कक्षाएँ पढ़ आए हो, वह फिर से पढ़ो, इससे ज्यादा उसके लिए और कोई दुखदाई बात नहीं। बिल्कुल इसी तरह कोई मनुष्य जन्मा, पढ़ा-लिखा,

ज़रा बड़ा हुआ तो उसकी शादी हुई, बच्चे हुए। उनका पोषण किया, उनको पढ़ाया, उनकी शादियाँ कीं, फिर यह बूढ़ा हो गया। जिन्दगी में कई प्रकार के उतार-चढ़ाव देखे, दुख-सुख भोगे, फिर यह मर गया। अब इसे कह दिया जाए कि तुम फिर बच्चा बनोगे, फिर पढ़ाई-लिखाई करोगे, फिर तेरी शादी होगी, फिर तेरे बच्चे होंगे, फिर उनका पोषण करोगे और अपने कर्मों के मुताबिक दुख भी भोगोगे। जो काम पूर्व जन्म में किए थे, वही फिर से करोगे, बिल्कुल उसी तरह जैसे एम.ए. कर चुके बच्चे को कह दिया जाए कि तुम अब प्रथम कक्षाएँ फिर से करो। यह बहुत दुख की बात है।

देवता

जैसे 100 मील की दूरी हो और 90 मील चल चुका हो और शरीर का अंत हो जाए, ऐसे मनुष्य को देवता कहते हैं। यह देवते मनुष्य जन्म के आकांक्षी हैं और जो यह 10 मील की दूरी रह गई है वह पूरी कर लें और परमात्मा के साथ मिलन हो, क्योंकि परमात्मा के साथ मिलन मनुष्य जन्म में ही हो सकता है। इसलिए देवता भी इस मनुष्य जन्म को तरसते हैं।

इस देही कउ सिमरहि देव॥ *(अंग ११५९)*

देवते को परमात्मा का रूप होने के लिए अर्थात् आगे जाने के लिए मनुष्य जन्म लेना पड़ेगा और देवते का शीघ्र जन्म नहीं होता, क्योंकि इतनी पवित्र माँ हो जिसके द्वारा वह आए। यह देव रूहें लम्बा समय इन्तज़ार करती हैं क्योंकि उस तरह के संस्कारों वाली माँ कोई हो, जिसके द्वारा उनका जन्म हो। यह देव रूहें अक्सर मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारों में गुप्त रूप में होती हैं।

भूत-प्रेत रूहें इनका भी शीघ्र जन्म नहीं होता, क्योंकि इतनी गंदी माँ हो, इतनी कसाइण माँ हो, जिसके द्वारा वह आ सकें। साधारण मनुष्य मृत्यु के पश्चात् तेरह से चालीस दिनों के भीतर-भीतर किसी गर्भ में प्रवेश कर जाता है, मगर भूत-प्रेत रूहों को इन्तज़ार करना पड़ता है। यह रूहें अक्सर जुआ-घरों, शराबख़ानों और वेश्या के घरों में होती

हैं। भूत-प्रेत जो तमाम ज़िन्दगी बुरे कर्म ही करते रहे, वह मृत्यु के पश्चात् भूत-प्रेत बनते हैं।

सो हमें यह मनुष्य जन्म बड़ी मुश्किल से मिला है, भगवान के साथ मिलन का यह समय है। इसलिए हमें यह मनुष्य जन्म व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए।

जब तक जवानी है, परमात्मा का नाम जप ले

बचपन

बचपन अचेत में व्यतीत हो जाता है। वृद्ध होने पर बहुत सारी उमंगें ठंडी पड़ जाती हैं। शरीर कमज़ोर हो जाता है। एक समय है जवानी, अगर जवानी सफल हो गई तो समझो बचपन और बुढ़ापा भी सफल हो गया। जगत् में आना भी सफल हो गया, मगर जवानी अक्सर मनुष्य संभालते नहीं। कंचन जैसी काया हो, सुन्दरता हो, युवावस्था हो, कोई विरले ही हैं जिनके भीतर परमात्मा का प्यार हो। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे और चर्च के भीतर अक्सर वृद्ध मनुष्य ही मिलते हैं, युवक तो विरले ही दिखाई देते हैं।

दुनिया के लगभग 90 प्रतिशत भक्त जवानी में ही परमात्मा की लगन में लगे हैं। कभी-कभार ही कोई एकाध घटना घटती है जब कोई बच्चा परमात्मा की लगन में लगा हो, कोई वृद्ध भी परमात्मा की लगन में लगा हो, मगर अक्सर जवानी में ही लगन लगती है। इसलिए जितना समय जवानी है, परमात्मा का नाम जप ले, वृद्धावस्था भी आनंद से कटेगी। वृद्धावस्था में भी यह रंग बना रहेगा। जैसे कहावत है कि 'बचपन में खाया जवानी में कमाया, बुढ़ापे में काम आया'।

जब शरीर में धन कमाने की शक्ति न रहे, फिर धर्म कमाने की शक्ति भी नहीं रहती। निर्बलता के साथ धन कमाना भी मुश्किल है, निर्बलता के साथ धर्म कमाना भी मुश्किल है। इसीलिए जब तक जवानी है, नाम का रंग ले ले, क्योंकि कम दिनों की जवानी है, फिर शरीर वृद्ध हो जाता है, वृद्ध मनुष्य के माथे पर सिलवटें, आँखों में चिन्ता, कराहटें निकलना इसी बात का सबूत है कि जवानी व्यर्थ गंवा दी। जब जवानी व्यर्थ गँवा दी है तो यह चिन्ता, दुख में जीवन जी रहे हैं, महज़ इसलिए कि जवानी में आनंद एकत्र नहीं किया। बुढ़ापा कंगालता

में व्यतीत हो रहा है, महज इसलिए कि जवानी में धन संचित नहीं किया।

जवानी एक ऐसी सौगात है परमात्मा की तरफ से कि काम-रस इसी आयु में ही प्रधान है और राम-रस भी इसी आयु में प्रधान है। काम-रस इसलिए है कि जीवन में संतान की उत्पति हो, मगर राम-रस इसलिए है कि जीवन में भगवान की उत्पति हो। अगर समूची शक्ति संतान की उत्पति में लग गई फिर जीवन में भगवान की उत्पति नहीं होगी। उत्पन्न हो संतान भी, उत्पन्न हो भगवान भी, जवानी सफल हो जाएगी। वृद्ध मनुष्य जहाँ संतान उत्पन्न नहीं कर सकता, वहाँ वह भगवान उत्पन्न कर सके, मुश्किल है। संतान पैदा हो सके, बल चाहिए, भगवान पैदा हो सके, बल चाहिए। साहिब कहते हैं:

दिन थोड़ड़े थके भइआ पुराणा चोला॥

(अंग २३)

दिन कम हैं, शरीर थकान से भर जाता है, चोला (शरीर रूपी पहरावा) पुराना हो जाता है, मनुष्य वृद्ध हो जाता है, वृद्धावस्था उसकी दुखदाई गुज़रेगी, जिसने जवानी को संभाला नहीं। अक्सर युवक धन कमाने में सफल हो जाता है, मगर संभाल नहीं सकता। नशों में डूब जाता है, विकारों में डूब जाता है और कंगाल हो जाता है। कई दफा देखा जाता है कि युवा मनुष्य धार्मिक कर्म करता है, सेवा करता है, दान-पुण्य करता है, जप-तप करता है, मगर व्यर्थ का अहंकार आ जाता है। वह अहंकार करके सभी किया-कराया व्यर्थ ही गँवा बैठता है।

जवानी में होश चाहिए, जबकि अक्सर जवानी में होश नहीं होता, जोश ही जोश होता है। जोश से धन कमाया, धर्म कमाया, मगर होश से ही संभाला जा सकता है। अक्सर जवानी में मनुष्य भटक जाता है। युवा सही अर्थों में वही युवा है, जिसके पास जोश के साथ होश भी है।

शेख़ सायदी साहिब कहते हैं कि अगर कोई व्यक्ति जवानी में गुनाहों से तौबा कर ले तो मैं उसे दरवेश मानूँगा। अगर जवानी में पर तन, पर-धन से बचा रहे, क्योंकि सभी गुनाह पर-तन, पर-धन की वजह से होते हैं। वासना-वश होकर पर-तन और लोभ-वश होकर पर-धन की वजह से व्यक्ति जवानी के नशे में गुनाह कर बैठता है। आगे

शेख़ सायदी साहिब कहते हैं कि अगर कोई वृद्ध (बूढ़ा) मनुष्य यह कहे कि मैंने गुनाह करके छोड़ दिए हैं, तो मैं नहीं मानूँगा। अगर उससे पूछें, तुम क्यों नहीं मानते तो वह कहते हैं अगर कोई बूढ़ा भेड़िया यह कहे कि ऐ भेड़ो! मुझसे डरो मत, मैंने तुम्हें पकड़ना छोड़ दिया है तो वह झूठ बोल रहा है। उसने पकड़ना नहीं छोड़ा, उससे भेड़ें पकड़ी नहीं जातीं। इसी तरह बूढ़े व्यक्ति ने गुनाहों को नहीं छोड़ा, अब गुनाह उससे होते ही नहीं, क्योंकि गुनाहों ने जहाँ आकर बैठना था—आँखों पर, रसना पर, कानों पर, यह सब कुर्सियाँ तो टूटी पड़ी हैं। अब उससे गुनाह होते ही नहीं हैं। मगर अंदर उसी तरह जवानी जैसी गुनाहों भरी वृत्ति है। खुद तो वृद्ध हो गया है मगर भीतर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, निंदा, चुगली यह अवगुण युवा के युवा हैं। अगर जवानी में इनसे न बचा गया, यह अवगुण न छोड़े तो वृद्ध अवस्था में यह वृत्ति नहीं छोड़ी जा सकती। यह बात भिन्न है कि वृद्धावस्था में इसके पास यह गुनाह करने की समर्था नहीं रही। इसलिए जवानी में ही इनसे बचना चाहिए।

जवानी एक फूल की तरह है, कुम्हलाते देर नहीं लगेगी। वृद्धावस्था के आते भी देर नहीं लगेगी। यह चार दिन का खेल है। जैसे जवानी का ज़ोर कम होता है, चमड़ी शरीर की कुम्हला जाती है, चेहरे पर सिलवटें पड़ जाती हैं और मनुष्य हड्डियों का ढाँचा बन जाता है। यौवन का धन यह सुन्दरता सदा नहीं रहती है। यह चलाय-मान है। इसलिए जब तक यौवन है, नाम जप ले, वृद्धावस्था में भी फिर आनंद बना रहेगा। युवा होते-होते मनुष्य भगवान का रूप हो जाए, मगर अक्सर देखा गया है कि मनुष्य युवा होते-होते शैतान का रूप हो जाता है। दुनिया के सारे उपद्रव, लूट-मार, पिटाई सभी यौवन में ही होती हैं। वृद्ध व्यक्ति नहीं कर सकता, बच्चा भी नहीं कर सकता। बड़े-बड़े लुटेरे और कातिल डकैत युवा हैं। मगर भगवान की प्राप्ति भी जवानी में ही होती है। इसका सारांश यह है कि युवा होते हुए मनुष्य शैतान न हो, नाम जप कर, यौवन संभाल कर, भगवान का रूप हो जाए ताकि जगत् में आना सफल हो सके। सतिगुरु यह सफलता सभी के आँचल में डालें।

जपहु त एको नामा ।। अवरि निराफल कामा ।।

धर्म के जितने भी कर्म हैं—दान, पूजा-पाठ, सेवा, अन्य भी तरह-तरह के परोपकार हैं, अगर नाम नहीं तो साहिब कहते हैं सभी निष्फल हैं। जपु नहीं तो सभी व्यर्थ चले जाते हैं। गुरु नानक देव जी कहते हैं:

जपहु त एको नामा॥ अवरि निराफल कामा॥

गुरु ग्रंथ साहिब जी की प्रथम बाणी का नाम 'जपु' है। दशम ग्रंथ की प्रथम बाणी का नाम 'जापु' है। सम्मान में हम जपुजी साहिब, जापु साहिब कहते हैं। गुरु नानक देव जी का उपदेश है कि:

जपहु त एको नामा॥ अवरि निराफल कामा॥

सभी धार्मिक काम निष्फल हैं। कथा करना, कीर्तन करना, सेवा करना, दान करना, परोपकार करना। यह सभी जप के बिना इस तरह हैं जैसे दूल्हे के बिना बारात। जैसे दूल्हे के बिना बारात शोभा नहीं पाती और उसको बारात कहना ही नहीं चाहिए, जिस में दूल्हा न हो। दूल्हा ही नहीं है तो बाराती, बाराती ही नहीं हैं। अगर जपु ही नहीं है तो सभी धार्मिक कर्म, धार्मिक कर्म ही नहीं हैं।

इस पर मैं एक और उदाहरण दे दूँ तो बात स्पष्ट हो जाए। एक किसान अपने खेतों में हल चलाए, पानी भी दे, खाद भी डाले, सुहागा भी लगाए और चारों ओर बाड़ भी लगा दे। चंद दिन हो जाएँ, कुछ भी अंकुरित न हो। वह किसी सयाने को बुला लाए, भाई पता नहीं क्या बात है, कुछ अंकुरित नहीं हुआ और आगे से पूछा जाए कि तूने ढंग से हल चलाया था? कहता है दो दफा हल चलाया। वह पूछे ज़मीन में पानी था? कहता हाँ, मैंने पानी भी दिया है। खाद भी डाली है। ठीक है यह बताओ तूने बीज कौन-सा बोया है? कहता मैंने बीज तो डाला ही नहीं। अगर बीज ही नहीं डाला तो हल चलाया किस

काम का, खाद डाली किस काम की, सुहागा चलाया किसी काम का नहीं, बाड़ लगाई सभी व्यर्थ। बीज नहीं बोया तो सभी कार्य व्यर्थ। जपु नहीं है तो सभी कर्म व्यर्थ। गुरु नानक देव जी की यह पंक्ति न होती तो मेरे पास कहने की जुर्रत नहीं थी :

जपहु त एको नामा॥ अवरि निराफल कामा॥

सिक्ख जगत् में बाकी धार्मिक कर्मों की कमी नहीं है। अगर कमी है तो सिर्फ जपु की। यही कारण है कि कौम के भीतर ब्रह्मज्ञानी पैदा होने बंद हो गए हैं। क्या कौम के अंदर ज्ञानी नहीं हैं? ज्ञानियों की तो भरमार है। क्या दानी नहीं हैं? दानियों की भी भरमार है। देश के अंदर, विदेश के अंदर बड़े-बड़े दानी हैं। बड़े-बड़े सेवा करने वाले मौजूद हैं। उनकी अथक सेवा देख कर हैरानी होती है। मैं जब दिल्ली जाता हूँ तो मेरी रिहायश सीस-गंज में होती है। वहाँ हर रोज़ रात को 10 बजे से 12 बजे तक कुछ युवा सारी सफाई करते हैं। उनकी सेवा देख कर मुझे हैरानी होती है। खास तौर पर सर्दियों के दिनों में, जब शीत लहर पूरे यौवन पर होती है और यह ठण्डे पानी के साथ सारी सफाई करते हैं। उनकी सेवा देखकर मुख से धन्य-धन्य निकलता है। कोई लंगर की सेवा कर रहा है। प्रभातकाल सुबह पाँच बजे एक जत्था ऐसा है जो चाय की सेवा करता है क्योंकि सभी यात्री बाहर से हज़ारों की संख्या में सीस-गंज साहिब ठहरे होते हैं। ये सभी को रोज़ाना चाय पिलाते हैं। एक जत्था ऐसा है जो सात बजे नाश्ता करवाता है। फिर कोई लंगर में सेवा करते हैं, ग्यारह बजे लंगर बाँटने की। सेवा की तो कोई कमी नहीं है। देश-विदेश, सारी दुनिया में गुरुद्वारे हैं, खास तौर पर युरोप में, अमेरिका, कैनेडा 24 घण्टे लंगर चलता है। कोई किसी वक्त भी चला जाए, लंगर तो मिलता है। सेवा की कमी नहीं है। दान की कमी नहीं है। कीर्तनियों और कीर्तन सुनने वालों की भी कमी नहीं है। मैं तो हैरान हो जाता हूँ कि इतने धुआँधार कीर्तन दरबार, कथा दरबार, कवि दरबार, इतनी तकरीरें, इतने लैक्चर, कथा-कीर्तन सुनने वालों की संख्या प्रचुर हो जाती है। पर यदि

प्रभातकाल जपु की बात करें तो संख्या कोई नहीं। कमी सिर्फ जपु की है। एक काम से सभी काम फलीभूत होते हैं। जैसे एक दूल्हे के साथ सभी बारातियों की शोभा बन जाती है, उसी तरह एक जपु के साथ दान भी, सेवा भी, सभी परोपकार शोभा बन जाते हैं। अगर जपु नहीं तो ज्ञान में से भी, सेवा में से भी, दान में से भी, परोपकार में से भी अहंकार पैदा होगा, निरंकार नहीं।

जपि कब और कैसे ?

दुनिया के सभी पथ-प्रदर्शक पुरुषों ने परमात्मा के साथ लगन लगाने का एक ही साधन बताया है—उसे स्मरण करना, उसको याद करना, उसका सिमरण करना, जप करना। उसको स्मरण करना है, मगर चित की एक आदत है कि मन जिसे अपना मान ले, उसको याद करता है और जिसको पराया मान ले, वह भूल जाता है। अपना परिवार याद आता है, अपने पदार्थ याद आते हैं। अपने ही दुश्मन याद रहते हैं। अपने ही ग़म याद आते हैं, दूसरों के नहीं।

कथा-कीर्तन सुनते अगर परमात्मा अपना प्रतीत हो तो जैसे परिवार हमारे मन का हिस्सा है, निरंकार भी मन का हिस्सा बन जाएगा। मगर मन का हिस्सा परमात्मा नहीं है क्योंकि परमात्मा को मन ने पराया मान लिया है, **'सभु किछु अपना इकु राम पराइआ'** और जब है ही पराया तो याद कैसे आए। और संबंध बनते हैं, याद करने से। मेरी जेब में हीरा हो, मगर मुझे याद न हो और जब तक याद नहीं आता, उतनी देर तक तो संबंध टूटे हुए हैं।

एक तर्क यहाँ खड़ा हो सकता है कि क्या परमात्मा की याद में हम हैं ? इतने सारे जीव, पशु-पक्षी और इतना लम्बा-चौड़ा प्रसार, कुछ तो उसकी याद में से भी निकल गया होगा। छोटा-सा हमारा घर होता है मगर कोई व्यक्ति पूर्ण विश्वास के साथ नहीं कह सकता कि घर की हर वस्तु मुझे याद है। बहुत कुछ ऐसा होता है, जो याद में नहीं होता। यह तो कभी-कभार जब मनुष्य अपने घर की सफाई करता है या विशेष तौर पर निरीक्षण करता है तो कहता है, लो यह वस्तु तो घर में पड़ी थी। हमें याद ही नहीं थी। घर की सभी वस्तुएँ याद नहीं होती है और करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं, जीव-जन्तुओं की तो संख्या ही नहीं है, लम्बा प्रसार है। कोई तो परमात्मा की याद में से निकल गया होगा ? कोई कीट, कोई मकौड़ा, कोई पशु, कोई पक्षी, कोई पेड़, कोई

पहाड़, कोई फूल, कोई मनुष्य आखिर किसी को तो वह भूल गया होगा। गुरु नानक देव जी महाराज के शब्द जो आप आसा दी वार में श्रवण करते हो, साहिब कहते हैं :

चितै अंदरि सभु को वेखि नदरी हेठि चलाइदा ॥

(अंग ४७२)

सब कुछ उसकी याद में है और सब कुछ उसकी निगाह के नीचे है। रौंगटे खड़े हो जाएँगे, अगर इतना एहसास हो जाए कि हम उसकी याद में हैं, हमारी याद में वह नहीं। उसकी तरफ से हमारे साथ रिश्ता बना हुआ है, हमारी तरफ से उससे रिश्ता टूटा हुआ है। मुझे इसी संबंध में एक विद्यालय की बात याद आ रही है, जहाँ इस्लामी तालीम दी जाती थी, तेहरान में। जो वहाँ का मुख्याध्यापक था, उसका एक तकिया-कलाम था। वह जैसे ही बच्चों को पढ़ाना शुरू करता तो पहले शब्द उसकी ज़ुबान से यही निकलते थे "खुदा देख रहा है, खुदा व्यापक है", फिर वह पढ़ाई शुरू करता था। बच्चों को भी मालूम हो गया था कि पहले शब्द तो यही निकलेंगे। एक दिन अजीब हादसा हो गया। वह अध्यापक जब बच्चों के सम्मुख आया तो उसने आते ही बच्चों से प्रश्न किया, और रोज़ का जो तकिया कलाम था, उसका उपयोग नहीं किया। उसने कहा, "बच्चो ! यह बताओ, खुदा कौन-सी जगह नहीं है ?" बच्चे दंग रह गए कि हद हो गई, रोज़ाना हमें पढ़ाता था कि खुदा व्यापक है, हर जगह पर मौजूद है और आज प्रश्न करता है कि बताओ खुदा कौन-सी जगह पर नहीं है। सभी बच्चे चुप, मगर एक बच्चे ने हिम्मत की, खड़ा हो गया और कहता है, उस्ताद जी, अगर इजाज़त हो तो जवाब दूँ। हैरानगी उस्ताद को भी हो गई कि मैंने प्रश्न ही गलत किया है और यह कमबख़्त जवाब देने को तैयार हो गया है और जवाब भी गलत होगा। यह बच्चा गलत है, नादान है। ठीक है बताओ खुदा कौन-सी जगह पर नहीं है ? बच्चा कहता है, उस्ताद जी! खुदा तो व्यापक है और खुदा देख भी रहा है। खुदा एक जगह पर नहीं है बाकी सभी जगहों पर है। बता कहाँ नहीं है ? मनुष्य की याद में नहीं है, मनुष्य की समझ में नहीं है। बाकी सभी जगहों पर है। आँखों में वही है, रसना में वही है, हाथों और पैरों में वही है, मगर याद में नहीं है। अब इतिहास कहता है कि वह उस्ताद

बच्चे के पाँव पड़ गया। कहता, मैंने तो समझा था कि मेरा प्रश्न ही गलत है, मगर तुम्हारे जवाब ने मुझे गलत साबित कर दिया है। तुम सही हो। वाकई ही एक जगह परमात्मा नहीं है। रोम-रोम में वही है, ज़र्रे-ज़र्रे में वही है। मगर मनुष्य की याद में नहीं है, स्मृति में नहीं है। स्मरण करने का तरीका गुरु नानक देव जी ने बताया है। जपु व जपु कैसे करें, गुरु नानक देव जी महाराज ढंग भी बताते हैं:

गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ॥
दुखु परहरि सुखु घरि लै जाइ॥

ऐसे करो गाओ ज़बान से वाहिगुरु-वाहिगुरु। फिर 'सुणीऐ' फिर सुनो, सभी दुख नाश हो जाएँगे। मुश्किल है काम, एक मिनट में भी नहीं कर सकोगे, जिस ढंग से गुरु नानक देव कहते हैं। रसना गायन करे वाहिगुरु-वाहिगुरु और कान सुने और मन में भावना भी हो 'मन रखीऐ भाउ'। भाउ शब्द दो अवस्थाओं के मिलन से बनता है। भरोसा और प्रेम, बन जाता है भावना। भावना में भरोसा भी होता है और प्रेम भी होता है। ऐसे होता है कि किसी पर आप भरोसा तो रखते हो, कह देते हो कि हाँ काबिले-ऐतबार व्यक्ति है। मगर उसके साथ प्रेम नहीं होता। मगर किसी के साथ प्रेम तो होता है, भरोसा नहीं होता। अपने बच्चे से बहुत प्रेम है। वह पीठ को भी हाथ लगाए तो सीने में ठंडक महसूस होती है। मगर उसकी हर बात पर भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि अभी नादान है, बच्चा है। प्रेम बहुत है, मगर भरोसा नहीं। मगर किसी पर भरोसा बहुत है परन्तु प्रेम नहीं। परन्तु जिस पर भरोसा भी हो जाए और प्रेम भी हो, उसे कहते हैं भावना। साहिब कहते हैं:

गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ॥

ज़बान के साथ गाएँ और ध्यान से सुनें और मन में भावना भी हो, यह ढंग बताया है। अब आप कहोगे कि ध्यान किसके साथ जोड़ें। मैं अर्ज़ करूँ कि सुनना ही ध्यान लगाना है और बिना ध्यान लगाए तो सुन नहीं सकोगे। एक व्यक्ति ऊँची-ऊँची बोल रहा है, दूसरा सुन रहा है और सुनने वाला अचानक कह देता है कि दोस्त यह बात फिर कहना, मैंने नहीं सुना। तूने क्यों नहीं सुनी ? कहता है, मेरा ध्यान कहीं ओर चला गया था और सुनना तो ध्यान ने ही है। अकेले कानों ने

थोड़ा सुनना है। ध्यान से ही तो कान सुन सकते हैं, अन्यथा नहीं। गुरमति की साधना सुनने पर खड़ी है।

मति विचि रतन जवाहर माणिक
जे इक गुर की सिख सुणी॥

और

नानक भगता सदा विगासु॥
सुणिऐ दूख पाप का नासु॥

सुनते ही दुख और पाप नाश हो जाते हैं। सुनते ही मनुष्य पीर बन जाता है, सुनने की तो इतनी महिमा है। मैं इस ढंग से भी बयान करता हूँ कि हमारे हिन्दू भाई जाते हैं मंदिर में दर्शन करने, किसी देवी-देवता की मूर्ति के। पूर्ण साधना दर्शनों पर खड़ी है, देखने पर खड़ी है। हमारे मुसलमान भाई जाते हैं मस्जिद में पढ़ने के लिए नमाज़। पूर्ण साधना पढ़ने पर खड़ी है। सिक्ख जाता है गुरुद्वारे सुनने के लिए गुरु का शब्द, पूर्ण साधना सुनने पर खड़ी है। देखना आसान है, क्योंकि आँखों के सम्मुख जो कुछ है, दिखाई देगा। देखने से ज़रा-सा मुश्किल है पढ़ना, ज़रा-सा ध्यान चाहिए। मगर पढ़ने से बहुत ज़्यादा मुश्किल है सुनना, पूर्ण ध्यान के बिना मनुष्य सुन ही नहीं सकता। चाहे अपनी रसना उच्चारण भी करती है, चाहे किसी दूसरे की, सुनना बहुत ही मुश्किल है। मैंने तो देखा है कि लोग अखण्ड पाठ अपने घरों में रखवा तो लेते हैं, मगर उस कमरे में जाना ही भूल जाते हैं कि कहीं सुनना न पड़ जाए। कौन सुनता है, सुनना ही तो बंदगी है। भोजन का निवाला मेरे मुख में हो, पानी का घूँट मेरे मुख में हो और मैं नीचे करूँ ही न, क्या भूख मिटेगी ? क्या प्यास मिटेगी ? गुरु का शब्द मेरी ज़बान पर हो और मैं सुनूँ ही न, इसके साथ क्या होना है, कुछ भी नहीं। 18-18 घण्टे पाठ करने वाले अखण्ड पाठी मैंने देखे हैं। मजाल है एक कदम भी प्रभु की दुनिया में आगे गए हों। उसी तरह ही क्रोधी, उसी तरह ही लोभी, झूठ बोलने वाले और अहंकारी। गुस्ताखी की मुआफी मैं पाठियों से माँग लूँ, मैं भी इसी श्रेणी में हूँ। बाणी पढ़ने का लाभ है, बाणी का पता चलेगा, अर्थ बोध का पता चलेगा, कंठस्थ भी हो सकती है, मगर ज़िन्दगी बदलेगी नहीं चाहे पूरी ज़िन्दगी पाठ करते रहो। ज़िन्दगी बदलेगी जपु करने से और जपु भी कोई इस तरह करे 'गावीऐ

सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ॥' और मै यह भी अर्ज़ करूँ, पढ़ना आसान है, जपना मुश्किल है। जपने से मुराद ज़बान उच्चारण करे और मन सुने। मन सुनता नहीं। बड़े-बड़े योगियों का नहीं सुनता, बड़े-बड़े अभ्यासियों का नहीं सुनता।

अव्वल तो जपु वह करेगा जिसको पता चल जाए, संसार दुख है, परिवार दुख है। सब दुख है, सब झूठ है। जिस दिन इस असलियत का पता चलेगा उस दिन मनुष्य जपु करेगा। प्रभु की तलाश करेगा। यह संसार ही सब कुछ है। परिवार सब कुछ है। यह पदार्थ ही सब कुछ है, परमात्मा कुछ भी नहीं। यह अभी संसार से उदास नहीं हुआ। यह निरंकार की तलाश नहीं करेगा। संसार से उदास होकर ही परमात्मा की तलाश करेगा। फिर जपु करेगा और जिस दिन जपते-जपते मन ज़रा-सा नज़दीक चला गया, एक रस बन जाएगा परन्तु कुछ समय बनेगा, रस चला जाएगा। वहाँ से एक पीड़ा का जन्म होगा, उससे पहले नहीं। वह पीड़ा है धार्मिक। औलाद नहीं है, एक पीड़ा है। धन नहीं है एक पीड़ा है। मनभाते पदार्थ नहीं मिले या मनभाते संबंध नहीं बने, एक पीड़ा है। इस नई पीड़ा के शुरू होते बाकी सभी बे-मायने हो जाती हैं। जितने भी भक्तजन हैं, वह बहुत बड़ी पीड़ा से गुज़रते हैं। फिर जाकर उन्हें बहुत बड़ा आनंद प्राप्त होता है। यह पीड़ा अभी साधारण व्यक्तियों के भीतर पैदा हो सके, बहुत दूर की बात है क्योंकि साधारण व्यक्तियों के भीतर अभी संसारी पीड़ा है। किसी को परिवार की पीड़ा, किसी को कारोबार की पीड़ा। धार्मिक पीड़ा जिस दिन शुरू हो जाए, समझ लो कि वह मनुष्य धार्मिक हो गया। उसको पता चल जाएगा कि मैं परमात्मा से बिछुड़ा हुआ हूँ।

एक मैं और अर्ज़ करूँ कि जपने वाले लगभग हर शहर में मिल जाते हैं। मगर कोई जपु-जपु के उस महा-रस को प्राप्त कर ले, यह कोई लाखों में से एक-आध है। वह भी हर शहर में नहीं मिलता। हर देश में नहीं मिलेगा। चन्दन का पेड़ हर जंगल में नहीं है। सारी दुनिया घूम लो, सिर्फ कर्नाटक में मिलेगा। केसर कश्मीर के छोटे-से इलाके पंपोज़ में है और या स्पेन में होता है। अन्य कहीं भी नहीं। भारत ने भी कोशिश की, कश्मीर के अन्य इलाकों में बीज बोया, मगर नहीं हुआ। यूरोप के अन्य देशों ने भी कोशिश की। मेरे पढ़ने में आया कि नहीं हुआ। इसी तरह भगवान के साथ जुड़ी आत्मा हर जगह नहीं

है। जो जुड़ने की कोशिश कर रहे हैं, वह हर जगह हैं। जिन्हें कोई रस आ गया है, वह भी हर जगह हैं। हर मज़हब में मिल जाएँगे और जब कोई जपु करेगा। यह पड़ाव भी आएँगे कि यह अभी कर्म-काँड में ही हैं, अभी खिलौनों का खेल है, अभी बच्चा ही है, बालिग नहीं हुआ। धार्मिक जगत् में जन्म है इसका। आता है गुरुद्वारे, करता है पाठ, करता है सेवा, मगर धार्मिक पीड़ा पैदा नहीं हुई। अभी दुनियावी पीड़ा ही लेकर गुरुद्वारे आ रहा है। कोई परिवार की, कोई कारोबार की, कोई अन्य मनोकामना लेकर गुरुद्वारे आ रहा है। लगभग सारी दुनिया में यही मिलते हैं। कोई न कोई समस्या तो हरेक को होती है। अगर बेड़ी सागर में है तो लहरें तो टकराएँगी। जो मनुष्य संसार में हो, कोई न कोई समस्या तो टकराएगी, लहरों के बिना सागर नहीं होता, समस्याओं के बिना ज़िन्दगी नहीं होती। बुद्धिमत्ता तो यही है कि बेड़ी को ठेलते जाएँ। पारिवारिक समस्या है तो होने दो, कारोबारी समस्या है तो होने दो। जिसने जपु शुरू कर दिया है समझो कि वह धार्मिक तौर पर बालिग हो गया है और जपते-जपते ही गुरु की कृपा से पार हो जाएगा।

बिना जपु से हृदय शुद्ध भी नहीं होता। पाठ से नहीं होता, सेवा से नहीं होता, कथा-कीर्तन से भी नहीं होता, दान से भी नहीं होता। बड़े-बड़े दानी अहंकारी देखे गए हैं। बड़े-बड़े ज्ञानी, पूजा-पाठ करने वाले मैंने अहंकारी देखे हैं। कुछ भी नहीं है, भोजन मुख के रास्ते भीतर जाएगा, हज़म होकर खून बनेगा। शरीर की शक्ति बनेगा। गुरु का शब्द कानों के रास्ते भीतर जाएगा और जैसे भीतर जाएगा, रूहानी शक्ति बनेगा। आध्यात्मिक बल बनेगा। यह तो जपु द्वारा ही है। रसना गाए और कान सुनें 'गावीऐ सुणीऐ' वैसे तो वाहिगुरु-वाहिगुरु कहना कोई मुश्किल नहीं, लोग पूरी ज़िन्दगी जपते रहते हैं जिस ढंग से गुरु साहिब बताते हैं, मुश्किल है। जपु रसना से करना है और ध्यान से सुनना है। जपु जितना ज्यादा हो सके, करना है और मन में भरोसा भी रखना है।

गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ॥

अब प्रश्न पैदा होता है कि जपु कब करें? जपु अमृत समय करना है।

'अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु॥' इसी को ही ईरानी सूफ़ी फकीर शेख़ सायदी कहते हैं कि ऐ मानव! दिन को अगर तू व्यक्तियों में बादशाहों की तरह रहना चाहता है तो रात के चौथे पहर ख़ुदा के आगे भिखारी बन जाया कर। अमृत समय की अपनी महानता है गुरु-घर में। हमने ज़मीन के ऊपर जितने गुरुद्वारे बना दिए हैं, अच्छी बात है, मगर हमने उतने सत्संगी नहीं बनाए, उतने रसिक नहीं बनाए। उतने नाम जपने वाले नहीं बनाए, गुरुद्वारे तो बहुत हैं, और भी बन रहे हैं, सोने के क्लश लग रहे हैं। संगमरमर लग रहा है, मगर अमृत समय जाकर देखो, सूने पड़े हैं। किसी-किसी जगह पर बरकत है, मेरे पातशाह की, सत्संग बना है, नहीं तो घूम फिर कर मैंने आठ-आठ मंज़िलों के गुरुद्वारे भी देखे हैं, मगर अमृत समय आठ व्यक्ति भी नहीं होते।

जपु अमृत समय करना है, अमृत समय सुबह पाँच मिनट बैठ कर जपु करने का संकल्प आप करो, आगे से फिर गुरु जो करा लेगा, करा लेगा, पाँच मिनट का संकल्प तो अनिवार्य है। यह बात भिन्न है कि पाँच मिनट में से पाँच सैकिण्ड भी आपका मन लगे, एक सैकिण्ड भी न लगे। कलगीधर पातशाह कहते हैं कि अगर कोई एक सैकिण्ड भी जुड़ जाए तो :

एक चित जिह इक छिन ध्याइओ॥
काल फास के बीच न आइओ॥

सुबह तो पाँच मिनट का मन बना कर, यह व्यक्तिगत बंदगी शुरू करो। यह कथा-कीर्तन सुनना सामूहिक बंदगी है। जैसे हर घर में रसोई होती है। चार फुट जगह हर घर में चाहिए, जहाँ बैठ कर व्यक्ति व्यक्तिगत बंदगी जपु कर सके और वहाँ रोज़ाना जपु हो, यकीन करो वह जगह इतनी चार्ज हो जाती है, इतनी पवित्र हो जाती है कि वहाँ अगर कोई दुष्ट भी बैठ जाए तो उसकी ज़बान में से भी वाहिगुरु निकल जाएगा।

रोटी कमाना, रोटी पकाना और रोटी खाना यह हमारा काम है। मगर खाई हुई रोटी खून बने, यह हमारे हाथ में नहीं है। यह परमात्मा का काम है, अमृत समय वाहिगुरु-वाहिगुरु का जापु करना और मन सुने, इसी तरह की कोशिश करना हमारा काम है और यह जपा हुआ समाधि बन जाए, आनंद बन जाए। यह परमात्मा का काम है, उसके

हाथ में है। यह हमारा काम नहीं है। हम अपना काम करें, और परमात्मा अपना काम करे। ऐसी अरदास करें, ऐसी विनती, जोदड़ी करें।

मन को मनाओ कि अमृत वेले जपु करना है, हर हालत में करना है। जैसे बाकी सभी आवश्यक काम करते हैं, आवश्यक कामों से पहले इसको जगह देनी है, कोशिश खुद करो। गुरु पातशाह बख्शिश करें, आपका मन माने, दास का मन माने ताकि सुना हुआ और सुनाया हुआ सफल हो सके।

सत्संग का फल

सत्संग का फल है, परमात्मा को मिलने की प्यास का पैदा हो जाना। सत्संग कर-कर के अभी अगर प्यास नहीं जागी तो सत्संग का फल नहीं मिला। जीवन का फल तो नाम है, मगर सत्संग का फल है नाम की प्यास। कोई व्यक्ति सत्संग में गुरुद्वारे सुबह-शाम रोज़ाना आ रहा है तो किस तरह अन्दाज़ा करोगे कि इसको सत्संग का फल मिल गया है। अगर परमात्मा को मिलने की प्यास पैदा हो गई है, अगर गुरु को मिलने की भीतर भावना पैदा हो गई है, तो समझो कि उस व्यक्ति को सत्संग का फल मिल गया है। जीवन का फल क्या है ? वह है अकाल पुरुष में लीन होना। सो जिस व्यक्ति को सत्संग का फल मिल गया, वह फिर परमात्मा को याद करता है, उसका सिमरन करता है, उसका जपु करता है।

जे इकु होइ त उगवै रुती हू रुति होइ ॥

साहिब यहाँ मनुष्य को एक बीज की तरह मानते हैं। जैसे वैज्ञानिक अपने उपकरणों से बीज में पहले ही देख लेते हैं कि इसमें से कौन-सा पेड़ पैदा होगा। किस तरह के इसको पत्ते लगेंगे, किस तरह के फल और फूल लगेंगे। यह बीज से ही अन्दाज़ा हो जाता है। जन्म एक बीज है तो फल क्या है ? मनुष्य जन्म का फल क्या है ? इतनी बात स्पष्ट है कि बीज कोई बहुत सुन्दर नहीं होते, अपितु कुरूप होते हैं, मगर इन बीजों में से जब फल और फूल पैदा होते हैं, अत्यंत सुन्दर होते हैं। खूबसूरत फूलों का बीज भी कुरूप होता है। रसदायक, स्वादिष्ट और खूबसूरत फलों का बीज कोई खूबसूरत नहीं होता। अगर हम एक बीज की तरह हैं तो एक बात स्पष्ट हो गई कि हमारे पास कोई खास सुन्दरता, रस, उत्साह नहीं है, बीज की तरह हैं। परन्तु बीज जैसे अपने भीतर सुन्दरता, रस, फल, फूल छिपा कर बैठा है, इसी तरह इस जीवन के बीज में परमानंद छुपा पड़ा है। गुरु नानक देव जी महाराज कहते हैं कि मनुष्य एक ऐसा बीज है, जो खुद में परमानंद, परम रस छिपा कर बैठा है।

अब अगर बीज को बोएँ न तो बीज वैसे सड़ जाता है, गल जाता है, मिट जाएगा। मगर बोएँ तो भी मिटता है, मगर मिट कर पेड़ बनता है, फूल बनता है, फल बनता है। अब हर एक के पास बीज है। बीज क्या है ? बीज मन है। परिपूर्ण परमात्मा ने यह सभी की झोली में डाला है। अब इसको बोना है, कहाँ बोएँ, मन तो सूक्ष्म है। मन को बोना है, शब्द की ज़मीन में और फिर इस बीज में से जन्म होगा परमानंद का। परन्तु इस आनंद का जन्म कैसे हो ? जन्म होगा बीज से, और बीज मन है और परमात्मा ने यह सभी को दिया है। मगर मनुष्य ऐसा बदकिस्मत है कि मनुष्य ने बीज को दल (पीस) कर रख

दिया है। **'जे इकु होइ त उगवै'** बीज एक हो, मगर बीज एक नहीं रहने दिया, साबुत नहीं रहने दिया। बीज को 'दल' दें तो बन जाता है दाल और अगर ज़्यादा दल दें तो बन जाता है 'दलिया'। और अब अगर दाल को आप बोयो ज़मीन में तो क्या दाल पैदा होगी ? बिल्कुल नहीं होगी। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि :

बीउ बीजि पति लै गए अब किउ उगवै दालि॥

ऐ मनुष्य! तेरी यह दाल कैसे पैदा हो। मैंने तो देखा है कि किसी ने दल कर दाल ही नहीं बनाई, दलिया ही नहीं बनाया, आटा ही बना छोड़ा है। इतने टुकड़े-टुकड़े और अब आटा कोई बोए, ज़मीन में हल चला कर कहे कि अगर गेहूँ पैदा हो सकती है तो आटा क्यों नहीं। अगर चने पैदा हो सकते हैं तो बेसन क्यों नहीं पैदा हो सकता, नहीं होगा। बीज साबुत चाहिए। और जो यह मन हमारे पास बीज है, इसका तो दलिया हुआ पड़ा है। मन का एक छोटा-सा हिस्सा, जब व्यक्ति गुरुद्वारे होता है तो कीर्तन में होता है, बाकी दलिए के टुकड़े कोई कहाँ होता है, कोई कहाँ होता है। दाल के दो टुकड़े होते हैं। चलो एक गुरुद्वारे में एक कहीं और जगह पर, मगर नहीं इसने तो मन को दलिया बना रखा है और किसी किसी ने आटा। इतना दल छोड़ा है मन को। एक छोटा-सा हिस्सा जब व्यक्ति नितनेम करता है, उसमें होता है, बाकी तो बाहर बिखरा पड़ा है और जो एक छोटा-सा हिस्सा है और उसके साथ क्या होगा ? जैसे दलिया कोई बोए, फिर क्या कुछ अंकुरित होगा ? नहीं, बीज साबुत चाहिए। हैरान होते हैं बहुत व्यक्ति, भई बीस वर्ष हो गए हैं, तीस वर्ष हो गए हैं, बाणी पढ़ते, जापु करते, बात नहीं बनी और निराशा उनके चेहरे पर प्रगट होगी। एक ही बात कहनी पड़ेगी कि पुरखा! दलिया ही बोता जा रहा है, कहाँ बात बने ? तू साबुत बो, बो कर तो देख। तूने जब भी बोया है दलिया ही बोया है। कभी आज़मा कर देख लो, हमने बीज को दल दिया है और जब बीज को दल दें तो बीज साबुत नहीं हो सकता। मगर प्रभु की एक बख्शिश है कि दला हुआ मन साबुत हो सकता है और अगर कहीं नियम यही होता कि जैसे दला हुआ बीज साबुत नहीं हो सकता, और दला हुआ मन भी साबुत नहीं हो सकता तो फिर तो भगवान के साथ मिलन

का कोई मतलब ही नहीं था। फिर तो ज़िन्दगी यूँ ही बर्बाद चली जानी थी। मगर नहीं, यह प्रभु की बख्शिश ही है कि दला हुआ मन साबुत हो सकता है और जब एक मन साबुत नहीं होता, बीज साबुत नहीं होता तब तक बात नहीं बनेगी और जो रोज़ाना का सत्संग है, यह बीज को साबुत करता है और जब सत्संग करते-करते यह दलिया एक हो जाए, यह दाल एक हो जाए, भाव बीज साबुत हो जाए तो शब्द की ज़मीन में बो देना है। वाहिगुरु-वाहिगुरु का उच्चारण यह धरती है और इसी धरती में बीज बो देना है, भाव सुनना है। वैसे तो वाहिगुरु-वाहिगुरु कहना कठिन नहीं। पूरी-पूरी रात भी बहुत करते हैं अखण्ड कीर्तन। मन खण्डित है और कीर्तन अखण्ड है और अगर मन खण्डित है तो पुरखा अखण्ड कीर्तन चाहे पूरी ज़िन्दगी ही करते रहो, तो क्या है ? कुछ भी नहीं, तालमेल नहीं बैठेगा और तब तक नहीं बैठेगा, जब तक मन अखण्ड नहीं और मन तो तेरा दलिया हुआ पड़ा है। शब्द तो धरती है और शब्द की धरती में मन का बीज बोना है। तन तो तेरा दाल हुआ पड़ा है, दलिया हुआ पड़ा है। यह साबुत होता है कीर्तन और कथा सुनकर और जब बीज साबुत हो जाए तो पता चल जाता है अगर मनुष्य गुरुद्वारे बैठा है तो गुरुद्वारे ही बैठा है, कहीं और नहीं। अगर व्यक्ति कीर्तन ही सुन रहा है तो कीर्तन सुन रहा है, कुछ और नहीं। अगर व्यक्ति पाठ कर रहा है तो पाठ ही कर रहा है, कुछ और नहीं। मगर अक्सर मनुष्य कीर्तन-कथा सुनते हुए, पाठ करते समय और गुरुद्वारे बैठे हुए भी मन से संसारिक काम भी करते जाते हैं। ज़बान से पाठ कर रहे हैं और मन में कारोबार कर रहे हैं।

एक दफा जब गुरु नानक देव जी महाराज जी ने यह कहा कि न कोई हिन्दू न मुसलमान, सभी बराबर हैं तो सुलतानपुर के नवाब ने गुरु जी को कहा कि अगर हिन्दू और मुसलमान बराबर हैं तो आप फिर मेरे साथ मस्जिद में चल कर नमाज़ पढ़ो तो गुरु जी उसी वक्त तैयार हो गए और जब नवाब के साथ मस्जिद पहुँचे तो नवाब तो नमाज़ पढ़ने लग पड़ा, मगर गुरु जी उसकी तरफ देख-देख कर मुस्कराते रहे और जब नवाब ने नमाज़ की समाप्ति की तो उसने गुरु जी से कहा कि आप तो कहते थे कि मैं तेरे साथ नमाज़ पढूँगा मगर आपने तो नमाज़ पढ़ी ही नहीं तो गुरु जी ने आगे से जवाब दिया कि मैंने

तेरे साथ नमाज़ पढ़ने की बात की थी, तुम्हारे साथ घोड़े खरीदने की बात नहीं की थी। तुम तो काबुल में घोड़े खरीद रहे थे। बताओ क्या यह बात ठीक नहीं है। तो आगे से नवाब चुप कर गया। दरअसल तब काबुल में घोड़ों की मण्डी लगी हुई थी और उसने अपने आदमी काबुल घोड़े खरीदने के लिए भेजे हुए थे और नमाज़ पढ़ते उसका मन, उसका ध्यान काबुल में ही था। मुख से वह नमाज़ पढ़ रहा था, मगर मन में सोच रहा था कि मेरे आदमी बढ़िया नस्ल के घोड़े खरीद रहे होंगे और ले कर आएँगे। वह शरीर से मस्जिद में होता हुआ भी मन के कारण काबुल में घोड़े खरीद रहा था। दरअसल हर आदमी कथा-कीर्तन सुनते हुए, पाठ करते हुए, अपने-अपने घोड़े ही खरीद रहे होते हैं। कोई किसी रूप में, कोई किसी रूप में।

साहिब कहते हैं पहले तो बीज को साबुत करना है और जब बीज साबुत हो जाए तो फिर शब्द की धरती में बोना है। आगे फिर साहिब कहते हैं कि बोने की ऋतु भी ज़रूरी है:

जे इकु होइ त उगवै रुती हू रुति होइ॥

(अंग ४६८)

बे-मौसम बीज, बीज दें तो ढंग से अंकुरित नहीं होगा। सही तरीके से प्रफुल्लित नहीं होता, सारी दुनिया में बीज बोने की ऋतु वर्ष में एक दफा है तो कहीं दो दफा है। मैंने देखा है इधर कैलिफोर्निया में गेहूँ दो दफा बोते हैं, चावल भी दो दफा बोते हैं। इधर थाईलैंड में भी दो दफा बोते हैं। कुछ ऐसे पेड़ भी है जो वर्ष में दो दफा फल देते हैं। आमों के पेड़ मैंने देखे हैं मद्रास में। जनवरी में भी फल देंगे और मई में दुबारा फल दे देंगे और इस तरह के पौधे थाईलैंड, मलेशिया में काफी हैं, जो वर्ष में दो फसलें दे देते हैं आम की। हिन्दुस्तान में भी केरला, तमिलनाडू और कर्नाटक में मौजूद हैं। सो ज़्यादा से ज़्यादा इतना ही है कि कोई बीज वर्ष में दो दफा बोया जाता है और कोई बोया हुआ बीज फल वर्ष में दो दफा देता है, अव्वल तो एक दफा। साधारणतय: सारी दुनिया में वर्ष में बीज एक दफा बोया जाता है। वर्ष में एक ऋतु आती है। जैसे गेहूँ हमारे देश में वर्ष में एक दफा बोई जाती है। शेष फसलों के बारे में भी यही कुछ है। गुरु

का शब्द धरती है, मन जो है यह बीज है। मगर मन जो यह बोना है, गुरु के शब्द में, यह ऋतु कब आती है, कितनी दफा आती है। यह वर्ष में एक दो दफा नहीं आती, यह चौबीस घण्टों में दो दफा आती है। यह अकाल पुरुष ने बड़ी बख्शिश की है, बड़ी रहमत की है कि आठ पहरों में दो दफा ऋतु आती है। नाम जपने की, मन को शब्द की धरती में बोने की और इस दो दफा की ऋतु को गुरमति में कहा गया है अमृत वेला। सनातन मत में इसको संध्या कहा गया है। यह संध्या दो दफा आती है। जहाँ दिन और रात की संधी हो, उसको कहते हैं संध्या। सूर्य छिप गया है और रात अभी आई नहीं, क्योंकि रौशनी अभी मौजूद है। क्योंकि सूर्य छिप गया है, इसलिए हम दिन नहीं कह सकते। यह दिन और रात की संधी हो रही है, संध्या। सुबह अमृत वेले पहु फूट गई है पर दिन तो अभी नहीं हुआ, पूर्ण प्रकाश तो अभी हुआ नहीं, मगर हम रात भी नहीं कह सकते क्योंकि पहु फूट पड़ी है। दिन और रात की संधी, दिन और रात का जोड़, संध्या। यह संध्या दो दफा आती है। मनुष्य ने अक्सर एक ही दफा समझी है कि शाम को सूर्य छुप गया और संध्या हो गई। संध्या शब्द जन्मा है संधी से और यह संधी दो दफा होती है। उसी संध्या को हम अमृत वेला कहते हैं। हमारे लिए यह दो वक्त इबादत करने के लिए प्रेरणा है। हमें सुबह का नित्तनेम अलग दिया गया है और शाम का नित्तनेम अलग दिया है। शाम का नित्तनेम कम है, तू शाम के अमृत समय रहरासि साहिब पढ़ ले और ज़रा-सा जपु कर ले। मगर सुबह का नित्तनेम ज़रा लम्बा है। रात भर आराम के साथ, विश्राम से शरीर को ताज़गी मिल जाती है। इसलिए अमृत वेले सुबह, पहले तो उठकर स्नान कर के जपु करें, फिर उसके पश्चात् पाँच बाणियों का पाठ करें, फिर गुरुद्वारे जाएँ, कथा-कीर्तन सुनें।

संध्या, जहाँ दिन और रात की संधी हो रही हो, इसको ही क्यों चुना गया? कहते हैं जो दिन है, यह फैलाव है, सूर्योदय हो गया है, तो बंद कमल के फूल खिल गए। घौंसलों में से पक्षी निकल कर उड़ाने भरने लगे, रिज़क (भोजन) की तलाश करने लगे। दिन भटकाना है, दिन धंधा है, दिन धर्म नहीं है। लाख भी कोशिश करो दिन को बाज़ार याद आएगा, करतार नहीं। दिन को संसार याद आएगा, निरंकार

नहीं याद आएगा। कोशिश करके देखो, दिन का अपना असर है और रात को जीवन सिकुड़ता है। सूर्य छिप गया है, दिन का अन्त हो गया है। दिन का अन्त हो गया है, रात आ गई है और खिले हुए फूल अभी बंद हैं। पक्षी अपने-अपने घौंसलों में आ गए हैं। रात तो विश्राम है, कहते हैं मनुष्य की मानसिक शक्ति भी सिकुड़ती है, चेतना भी सिकुड़ती है रात को। इसलिए हमारे वैदिक ग्रंथों में लिखा है कि जितना दिन को भोजन करना है, रात को उसका आधा करो क्योंकि पाचन शक्ति भी सिकुड़ती है। मानसिक शक्ति भी सिकुड़ती है। इस पर ज़्यादा बोझ न डालो। मगर अब तो मैं देखता हूँ कि डिनर ही डिनर रह गए हैं, लंच नहीं। रात को पेट भरकर खाना है, तो इतना बोझ तूने दे दिया है पेट को और भोजन से जितनी शक्ति बनी थी उससे दोगुना उसको हज़म करने में खर्च हो जाएगी और जब तू सुबह उठेगा तो थका-थका महसूस करेगा। तुम आसा की वार का कीर्तन नहीं सुन सकोगे, ऊँघोगे, नींद आएगी तुम्हें। अक्सर मैंने अमृत समय देखा है, जहाँ-जहाँ सत्संग होता है, सुबह अमृत समय, आधे से ज़्यादा व्यक्ति सोए पड़े होते हैं। भाई हद हो गई, उठे भी हो, गए भी हो गुरु-घर, मगर नहीं सुन सके, इतना काम तो तूने दे दिया शरीर को, उस काम में ही शरीर थक गया। पुरखा! कुछ तो संयम चाहिए। अगर तुम नाम का रस लेना चाहते हो, फिर कुछ तो संयम करो और रात को आधा भोजन करो अगर तुम्हें सुबह कुछ आनंद लेना है तो ही बात बन सकेगी। सो दिन धंधा है, रात विश्राम है। तो इसलिए कहा गया है कि नए-नए अभ्यासी को, नए-नए- पाँधी को, जो पूरा हो गया है, उसकी बात नहीं। उसके लिए हर वक्त अमृत समय है। मगर नए-नए अभ्यासी के लिए यह बात है कि अगर वह दिन को कोशिश करेगा तो धंधा याद आएगा। मुसलमानों में भी यह बात है कि 'वेले की नमाज़ कुवेले की टक्करें'। कुवेले की तो टक्करें ही हैं। लाख कोशिश करो, रात विश्राम है। जैसे ऋतु मुताबिक बीज नहीं बोया तो ठीक ढंग से फलीभूत नहीं होगा। सो परमात्मा स्मृति में आ सके, दो ऋतुएँ हैं, जब दिन और रात की संधी हो रही हो। यह समय सहायता करता है सुरति-शब्द को एक करने में। उस समय तू भी आत्मा को परमात्मा में लीन कर ले, संधी कर ले। यह दो वक्त हैं, दो ऋतुएँ हैं और मैं यह भी

अर्ज़ कर दूँ कि जो आज तक कहा जाता है सुबह अमृत वेला हो गया है। अमृत वेले दो हैं, सुबह का अमृत वेला और शाम का अमृत वेला। अमृतमयी नाम जपना है, जब दिन, दिन नहीं है और रात, रात नहीं है। इसलिए गुरु साहिब कहते हैं **'रुती हू रुति होइ'** यह नहीं कि बीज साबुत हो, अपितु बोने की ऋतु भी हो और ऋतु है अमृत वेला।

अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु ॥

इसकी बड़ी महिमा है। भाई नंद लाल जी कहते हैं कि जिस के भीतर सत्संग करते-करते रंचक मात्र भी प्रभु को मिलने की प्यास पैदा हो गई है, उसने अमृत वेले का सोना अब हराम कर छोड़ा है, नहीं सोता वह अमृत वेले।

प्रथम बीज साबुत हो, फिर बोने की ऋतु भी हो। दोपहर को बैठ गया है जपुजी साहिब पढ़ने, बाणी तो किसी भी वक्त पढ़ी जा सकती है। मैं यह नहीं कहता कि जो पार हो गया है, वह आठों पहर ही पढ़ते रहते हैं, उनकी बात नहीं, नए अभ्यासी के लिए, पुरखा! नया अभ्यासी है और दोपहर को नित्तनेम कर रहा है, रात को दस बजे तुम रहरासि साहिब पढ़ रहे हो, तुझे खाक आनंद आएगा। हर वस्तु का अपना विधि विधान है। हर वस्तु का अपना नियम होता है और नियम का तो पालन करना पड़ेगा।

अगर बीज साबुत हो जाए और ऋतु के मुताबिक बीज बो दें तो यह फल कितना देता है, कब देता है ? भक्त कबीर जी कहते हैं कि बारह महीने ही फल देता है। हर समय ही फलों से तेरी झोली भरी रहेगी, हर समय आनंद बना रहेगा, हर समय ही तुम खुशियों में रहोगे।

कबीर ऐसा बीजु बोइ बारह मास फलंत ॥
सीतल छाइआ गहिर फल पंखी केल करंत ॥

(अंग १३७६)

सो शब्द की धरती में यह मन का बीज डाल दो, जब जपुजी साहिब पढ़ो तो मन का बीज डाल दो। जापु साहिब तो धरती है, मन का बीज डाल दो।

साहिब मेहर करें, हम ऋतु के मुताबिक बीज डाल सकें। इधर मैं देखता हूँ कि सूरज छिपा नहीं कि सरदार जी बोतल खोल कर बैठ गए। ऋतु तो गँवा दी इन्होंने। इधर सुबह पहु फूट गई है सुबह

की और यह लंबी चादर तान कर सोए ही पड़े हैं। ऋतु तो गँवा दी इन्होंने। और हो सकता है कि कोई बे-मौसम बीज भी अंकुरित हो जाए, उग जाए मगर ठीक ढंग से प्रफुल्लित नहीं होगा। ऋतु की पहचान अनिवार्य है। साहिब मेहर करें, हम बीज साबुत कर सकें, ऋतु के मुताबिक बीज बो सकें और परमानंद प्राप्त कर सकें। मनुष्य जन्म का बस यही फल है, इस बीज का यही फल है। परमात्मा यह फल सभी की झोली में डाले।

नाम की भूख

भोजन तन की आवश्यकता है, भजन मन की आवश्यकता है। भोजन की भूख प्राकृतिक है। भोजन की भूख पैदा हो, हमें कोई प्रयास नहीं करने पड़ते, श्रम नहीं करना पड़ता, खुद ही पैदा हो जाती है। नवजात शिशु के भीतर भी यह भूख पैदा होती है। भूख का दुख भी पैदा होता है, इस दुख की वजह से रो पड़ता है। रोते हुए बच्चे को देख कर माँ समझ लेती है कि भूखा है। भजन की भूख प्राकृतिक नहीं है। न पैदा हो तो सारी ज़िन्दगी भी पैदा नहीं होती। कई जन्म से लेकर मृत्यु तक मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे नहीं जाते। उन्हें मालूम ही नहीं होता कि धर्म भी कुछ होता है। भजन की भूख, नाम की भूख खुद पैदा नहीं होती। साधना करनी पड़ती है, सत्संग करना पड़ता है, कथा-कीर्तन सुनना पड़ता है ताकि यह भूख पैदा हो जाए। सत्संग उस दिन सफल समझ लेना, जिस दिन यह नाम की भूख पैदा हो जाए भजन की भूख पैदा हो जाए और जब तक यह भूख पैदा नहीं हुई, यह मनुष्य सत्संग में बैठेगा, उखड़ा-उखड़ा-सा। यह मनुष्य पाठ करेगा, बाणी पढ़ेगा उखड़ा-उखड़ा, क्योंकि भूख ही नहीं है। यह तो:

साचे नामु की लागै भूख॥
उतु भूखै खाइ चलीअहि दूख॥ *(अंग ९)*

सभी दुख मिट जाते हैं, उसके जिस मनुष्य के भीतर यह भूख पैदा हो जाए। बहुत ही बड़ा संगठन हो सत्संग का तो कोई एक आध मनुष्य ही होता है जिसके भीतर यह भूख पैदा हो जाए, जिस के अन्दर यह नाम की भूख हो। आप कहोगे कि मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारों में इतनी भीड़ है, क्या इनके अंदर नाम की भूख नहीं है? मैं अर्ज़ करूँ, नहीं है। यह गुरुद्वारे मनोकामना के लिए आते हैं। यह प्रभु से प्रभु को नहीं माँगते, प्रभुता माँगते हैं। यह परमात्मा से परमात्मा को

नहीं माँगते, पदार्थ माँगते हैं। यह प्रभु से प्रभु को छोड़ कर बाकी सब कुछ माँगते हैं। यह तो इस तरह हुआ कि जैसे पेड़ से कोई फूल माँगे, फल माँगे, लकड़ी, छांव इत्यादि माँगे। मगर कौन बताए कि तू पेड़ को ही माँग ले, बाकी सभी तो खुद ही आ जाएगा। मगर मनुष्य के अंदर नाम की भूख ही नहीं है। परमात्मा की भूख ही नहीं है, पदार्थों की भूख है। प्रभुता की भूख है। नाम की भूख कोई नहीं। बहुतों की तो पूरी आयु गुरुद्वारों में सेवा करते गुजर गई है, मगर नाम की भूख तो कोई नहीं। पूरी ज़िन्दगी बाणी पढ़ते गुज़र गई है। मगर भूख तो कोई नहीं और जितने समय तक नाम की भूख पैदा नहीं हुई, समझ लेना चाहिए कि मन में कुछ और प्रबल भूखें हैं। धन की भूख होगी, प्रभुता की भूख होगी या फिर कोई और अधिक संसारिक भूख होगी और यह भूखें मन में परमात्मा की भूख पैदा ही नहीं होने देतीं। अगर धन की बड़ी प्रबल भूख है तो इससे धर्म की भूख पैदा नहीं होगी। प्रभुता की बड़ी प्रबल भूख है, नेतागिरी की भूख है तो उस मनुष्य के भीतर प्रभु की भूख पैदा नहीं होगी। यह एक सच्चाई मैं बयान कर रहा हूँ कि 99 प्रतिशत प्रबंधक प्रबंधकी के झमेलों में ही फँस कर रह जाते हैं, इस भूख से वंचित रह जाते हैं। 99 प्रतिशत ग्रंथी, रागी और प्रचारक भी इस भूख के बगैर रह जाते हैं। सत्संगी तो रह ही जाते हैं। बड़े-बड़े कीर्तनियों के पास भी मैंने यह भूख नहीं देखी।

जितने समय तक धन की भूख है, धर्म की भूख पैदा नहीं होती। पदार्थों की भूख शिखर पर है, परमात्मा की भूख पैदा नहीं होती। मनुष्य की ज़रूरतें सीमित हैं, जैसे भूख की सीमा है, रोटी कितनी खा लेगा, दो खा लेगा, चार खा लेगा या छः खा लेगा, आखिर कोई तो सीमा है। मगर स्वाद की कोई सीमा नहीं है। स्वाद तो इसे ज़रूरत से ज़्यादा खाने पर मजबूर कर देगा। इसी तरह ज़रूरतों की सीमा है, मगर लोभ की कोई सीमा नहीं है। ज़रूरत से ज़्यादा आता है तो आए, मगर लोभ नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि लोभ की तो कोई सीमा ही नहीं है। बड़े-बड़े चोटी के धनवान व्यक्तियों के भीतर भी मैंने बड़ा प्रबल लोभ देखा है। जेब भरी हुई है धन से, घर भरा पड़ा है पदार्थों से, पर अभी भी मन में लोभ है और लोभी मन भूखा होता है। कबीर सरीखे के घर में दो वक्त की रोटी भी नहीं बनती, मगर कबीर के भीतर प्रभु के नाम की भूख है। धन की भूख नहीं, प्रभुता की भूख नहीं

है। यह दुनियावी तौर पर भूखा कबीर धार्मिक तौर पर तृप्त है। यह असल में बादशाहों का बादशाह है। बड़े-बड़े धनवान आपको धार्मिक तौर पर कंगाल मिलेंगे। मगर कभी-कभी कंगालों में से भी जो दुनियावी तौर पर कंगाल हैं, आपको बादशाह मिल जाएँगे। भूखे मनुष्य को भिखारी कहते हैं। किसी को धन-पदार्थों की भूख, किसी को प्रभुता की भूख, मगर जिसको प्रभु के नाम की भूख लग जाए, वह बादशाहों का बादशाह है।

जिस-जिस को भी अभी तक नाम की भूख नहीं लगी, समझ लेना चाहिए कि अभी धन की भूख, पदार्थों की भूख, प्रभुता की भूख बहुत ही प्रबल है, जो नाम की भूख पैदा ही नहीं होने देती और जिस मनुष्य के भीतर नाम की भूख पैदा होने लगे, वह इस तरह होती है कि जितनी मात्रा में संसारिक भूखें घटती हैं, उतनी ही मात्रा में प्रभु के नाम की भूख पैदा होती है। मगर मैं तो देखता हूँ कि छोटी-छोटी नेतागिरी में ही लोग लड़ते-झगड़ते रहते हैं। ठीक है, राजनैतिक कुर्सी के लिए तो बड़ा संघर्ष होता है। मगर गुरुद्वारों की प्रधानगी के लिए भी लोग एक-दूसरे का सिर फोड़ते हैं। एक-दूसरे की पगड़ियाँ उतारते हैं। जैसे मनुष्य पूरी ज़िन्दगी भी गुरुद्वारों में गुज़ार दे, नाम की भूख पैदा नहीं होगी क्योंकि इनको अपनी प्रधानगी का ही अहंकार होता है, अपनी सचिवता का ही अहंकार होता है। यही भूख इनको लगी रहती है। मुझे अक्सर गुरुद्वारों के प्रधानों, प्रबंधकों या सचिवों के बारे में ज़्यादा मालूम नहीं होता और न ही मैं इनके साथ ज़्यादा निकटता रखकर खुश होता हूँ। बड़े-बड़े ऐतिहासिक स्थानों के सचिव, प्रधान का भी मुझे कई दफा ज्ञान नहीं होता और मैं उनके साथ ज़्यादा मेल-मिलाप नहीं रखता क्योंकि 90 प्रतिशत यह वर्ग अहंकारी होता है और वह भी मेरी खातिर में कम ही आते हैं और कहते हैं मसकीन अहंकारी है और मैं कहता हूँ कि वह अहंकारी हैं। यह तो अब गुरु ही फैसला करे। गुरु ही जानता है, खैर! यह संसारिक भूखें जितनी शाँत होती हैं, उतनी ही प्रभु की भूख पैदा होती है।

और एक अर्ज़ कर दूँ कि जिसे भोजन की भूख न लगे, उसको कहते हैं कि यह शारीरिक तल पर रोगी है। भूख का न लगना, रोग की निशानी है। बुखार भी हो तो भी भूख नहीं लगती। जिसको भोजन की भूख न लगे समझ लो, शरीर रोगी है। जिसको भजन की भूख

न लगे, समझ लो मन रोगी। जिनको भोजन की भूख नहीं लगती ऐसे रोगियों की संख्या बहुत कम है, मगर ऐसे रोगियों से पूरा संसार भरा पड़ा है, जिनको भजन की, नाम की भूख नहीं लगती। गुरु साहिब कहते हैं:

जो जो दीसै सो सो रोगी॥

सो यह नाम की भूख लग सके, प्रयास करना पड़ेगा, गुरुद्वारे जाकर सत्संग करना पड़ेगा, कथा-कीर्तन सुनना पड़ेगा। यही सत्संग का फल है। परमात्मा यह फल सब की झोली में डाले।

दुखु दारू सुखु रोगु भइआ

निरंतर यह बढ़ रहे सुख हमारे लिए दुख बन जाते हैं। जब सुख रोग बन जाएँ तो परमात्मा के पास दारू सिर्फ दुख ही रह जाता है। 'दुख दारू' कब ? जब 'सुखु रोगु भइआ' जब सुख इतना आलसी बना दे कि 9-10 बजे से पहले जागना ही नहीं। जब सुख इतना एय्याश कर दे कि रहरासि के समय मनुष्य शराब की बोतल खोल ले, कुकर्म करे। जब सुख इतना सुखद कर दे कि इसके लिए गुरुद्वारे आना भी कठिन हो जाए, फिर सुख ही रोग बन गया और यदि सुख रोग बन गया है, फिर करतार का यह नियम है कि दुख की दवा दो, तो ही यह जागेगा, वैसे नहीं। तो ही यह सुचेत होगा। इसलिए ही गुरु नानक देव जी ने कहा है कि दुख परमात्मा की तरफ से कोई कोप नहीं है, उसकी तरफ से मिली एक देन है:

केतिआ दूख भूख सद मार॥
एहि भी दाति तेरी दातार॥

दुख-सुख और आनंद

मनुष्य की मंज़िल है आनंद। मनुष्य के प्राणों में प्यास है, आनंद की। आनंद सुख को नहीं कहते, क्योंकि हर सुख के साथ दुख है। कोई ऐसा सुख नहीं जो दुख को जन्म न दे। सुख के मुकाबले पर दुख खड़ा है, मगर आनंद सिर्फ आनंद है। उसके मुकाबले पर और कोई नहीं है। परमात्मा आनंद है। परमात्मा का मिलन ही आनंद का मिलन है। पदार्थों का मिलन, परिवार का मिलन, सुख का मिलना है और मिला हुआ सुख, दुख में बदल जाता है। संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जो मिलकर बिछुड़े न। जीवन भर मिलना बिछुड़ना, सुख-दुख चलता ही रहता है। मगर मौत के पश्चात् तो सभी कुछ ही बिछुड़ जाता है। संसार के दो रंग हैं। मिलना-सुख, बिछुड़ना-दुख। मन-भाते संयोग बन गए तो सुख, टूटेंगे तो दुख, यौवन आया तो सुखमयी लगता है, बुढ़ापा आएगा, दुखमयी लगेगा। अकेला दिन नहीं है, रात भी है। परमात्मा दो रंगों में नहीं है। इसलिए अगर परमात्मा मिल जाए तो वहाँ बिछुड़ना नहीं है।

मिलिआ होइ न वीछुड़ै जे मिलिआ होइ॥

(अंग ७२९)

वहाँ फिर सिर्फ आनंद ही आनंद है। कहने को तो हम अक्सर कह देते हैं कि भाई बड़ा आनंद आया, कोई रस आ गया होगा और रस नीरसता में बदल जाता है। आनंद नहीं आया। आनंद मिले बगैर दुख-सुख चलता रहेगा। हर एक हँसी के पीछे रोना छिपा हुआ है। हर लाभ के पीछे नुकसान छिपा पड़ा है। हर जन्म के पीछे मृत्यु छिपी पड़ी है।

फूल खिलता है मुरझाने का तख़ईअल लेकर,
जिसे हंसता हुआ पाओगे वह परेशान होगा।

अब मैं एक और अर्ज़ करूँ, दुख में समय लम्बा हो जाता है, सुख में समय छोटा हो जाता है, आनंद में समय खो जाता है। दुख में कोई बैठा है तो कहता है, आज की रात तो गुज़रने में नहीं आ रही। सुख में कोई बैठा है तो कहता है कि टाईम का पता नहीं चला। इतनी जल्दी टाईम व्यतीत हो गया। अगर कोई परमात्मा से जुड़ गया और आनंद आ गया तो वहाँ समय खो जाता है। मैं एक दिन सन्त माल पढ़ रहा था। सन्त अतर सिंघ जी मस्तुआने वालों की जीवन कथा। सेवक ने भोजन रखा और एक निवाला सन्त जी ने खाया, मुख से वाहिगुरु-वाहिगुरु निकला और समाधि लग गई और पंद्रह दिन लगी रही। जब पंद्रह दिनों के पश्चात् समाधि से उठे तो सेवक ने सोचा भई पंद्रह दिन हो गए हैं, सन्त जी को भूख लगी होगी, तो जल्दी-जल्दी भोजन तैयार कर लाया। जब भोजन सन्त जी के आगे लाकर रखा तो सन्त जी ने कहा, पुरखा! अभी तो खिला कर गए हो, अब फिर ले आए हो। सेवक ने हाथ जोड़कर कहा, "नहीं बाबा जी, अभी तो नहीं, पंद्रह दिन पहले लाया था, तब भी आप ने एक ही निवाला लिया था।" कहते, हैं ! (हैरानी में) पंद्रह दिन पहले, पंद्रह दिन ऐसे गुज़र गए जैसे एक सैकिण्ड। सो परमात्मा अकाल है, समय से रहित है अगर कोई उससे जुड़ जाए तो वहाँ भी समय नहीं रहता। आप किसी सुख में बैठे हो, कहीं रस आ रहा है, तो एक दिन ऐसे गुज़रेगा जैसे एक घंटा, एक मिनट। अगर दुख में बैठे हो, बेचैन हो, तालमेल नहीं बैठ रहा, बोर हो रहे हो तो एक घण्टा, एक-एक मिनट गुज़रने में नहीं आता।

दुख-सुख को एक फल माना गया है, और अगर यह फल है तो इनके अपने बीज होंगे। बिना बीज के तो कोई फल नहीं होता। दुख-सुख का बीज कर्म है। हम जो भी कर्म करते हैं, उसको दुख अथवा सुख के फल लगते हैं। आगे कर्म तीन प्रकार के माने जाते हैं—शारीरिक कर्म, मानसिक कर्म और वाचिक कर्म। शरीर कुछ करे, शारीरिक कर्म, जुबान कुछ बोले वाचिक कर्म और यदि मन कुछ करे विचारों के तल पर तो उसको मानसिक कर्म कहते हैं। मैं हाथ से किसी के घर को आग लगाऊँ, यह शारीरिक बुरा कर्म है। मैं जुबान से प्रेरित करूँ कि तू अमुक के घर को आग लगा दे, यह वाचिक बुरा कर्म है। अगर मैं मन से ही सोचता रहूँ कि इसका घर जल जाना चाहिए, यह मानसिक बुरा कर्म है। मैंने हाथों से कुछ शुभ किया, दान

दिया, पुण्य किया, सेवा की, यह शारीरिक शुभ कर्म हैं। मैंने जुबान से पाठ किया, मीठे बोल बोले, जोड़ने वाली बात की, यह वाचिक शुभ कर्म हैं। मैं मन से पूरा दिन शुभ ही सोचता रहा, अच्छा सोचता रहा, यह मानसिक शुभ कर्म है। अगर कोई यह कर्म करता है, शुभ या अशुभ, अच्छे या बुरे तो उन कर्मों का संस्कार बनता है। यह संस्कार से स्वभाव बनता है। उस स्वभाव से प्रारब्ध बनती है और उसी से ही प्रारब्ध की शाखा को दुख-सुख के फल लगते हैं। यह एक नियम है। अगर दुख है तो कर्म बुरे किए हैं, अगर सुख है तो कर्म कुछ अच्छे किए हैं। इसीलिए किसी दूसरे तीसरे को गुरुबाणी अनुसार दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

ददै दोसु न देऊ किसै दोसु करंमा आपणिआ॥
जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना॥

(अंग ४३३)

अगर सुख का बीज नहीं डाला, अच्छे कर्म नहीं किए तो सुख कहाँ ?

मगर मनुष्य की मंज़िल है आनंद। एक ऐसी अवस्था है जिसको हम दुख कह देते हैं। एक ऐसी अवस्था है जिसको हम सुख कह देते हैं। मगर दुख-सुख से ऊँची एक अवस्था है, उसको आनंद कहते हैं।

दुख का बोध तो सभी को है, ऐसा कौन है जिसने कभी दुख न पाया हो। ऐसा कौन है जो दुखी न हो। साहिब ने तो फैसला ही कर दिया है :

नानक दुखीआ सभु संसारु॥

सो सुख के बोध में भी बहु-संख्या आती है, मगर आनंद तो लाखों में किसी एक-आध को मिलता है और आनंद तक पहुँचने का वसीला है जपु। पाँच बाणियों के नितनेम की पहली बाणी है जपु और आखिरी है आनंद। मंज़िल तो आखिर पर ही होती है। इसलिए जिसने आनंद तक पहुँचना है वह प्रभु के नाम का जापु करे और जपु करते-करते गुरु कृपा से एक दिन मंज़िल पर पहुँच जाएगा, दुख-सुख से ऊँचा उठ जाएगा और आनंद मिल जाएगा।

वासना

जितने समय तक वासना चलती है, जन्म चलता रहेगा, मरण चलता रहेगा।

जुगि जुगि मेरु सरीर का बासना बधा आवै जावै॥

(भाई गुरदास जी)

वासना के तीन केन्द्र हैं—कामवासना, लोभ-वासना और अहंकार-वासना। इन तीनों स्थानों से वासना उठती है। वासना हमेशा उसको देखती है जो पास नहीं है। जो वस्तु मेरे पास है, उसकी वासना नहीं होती, वह तो पास है ही। वासना हमेशा उस वस्तु की होती है जो पास नहीं है, आज़मा कर देख लेना। वासना आगे बढ़ती गई, बढ़ती गई, जिस वस्तु की वासना थी, वह मिल भी गई, मगर वासना अब और आगे गई, जो अब भी नहीं मिला। कुछ न कुछ तो ऐसा होगा, जो अब भी नहीं मिला। यही वासना तृष्णा बन जाती है। जिस वस्तु की वासना थी, वह तो मिल गई, वासना और आगे चली गई, तृप्ति नहीं हुई। कामवासना, लोभ-वासना और अहंकार-वासना। क्रोध और मोह यह छाया की तरह साथ रहते हैं। इनका अपना कोई वजूद नहीं है। जिनका अपना वजूद है, जो हर वक्त मन में चलते हैं, यादों में चलते हैं, वह काम है, लोभ है और अहंकार है। जैसे तन के भीतर हर वक्त खून चलता है, स्वास चलते हैं, मन में काम, लोभ, अहंकार कुछ न कुछ चलता रहता है। मन खाली नहीं रहता। विचारों में अहंकार चल रहा होगा, और अहंकार प्रभुता माँगता है। लोभ चल रहा होगा और-और पदार्थ माँगता है या काम चल रहा होगा, रूप की माँग है।

रूपै कामै दोसती भुखै सादै गंढु॥ *(अंग १२८८)*

यह तीनों वासनाएँ फायदे नुक्सान के साथ चलती हैं। कभी एक में तूफान आ जाता है, दूसरी धीरे चलती है। कभी दूसरी में बाढ़ आ

जाती है, फिर तीसरी धीमी चलती है। किसी वक्त मनुष्य अहंकारी होता है, किसी वक्त लोभी होता है, किसी वक्त कामी होता है, फिर किसी वक्त अहंकारी हो जाता है। यह सिलसिला बदलता रहता है भीतर विचारों का पलटा होता रहता है। हर समय कामी नहीं, किसी वक्त लोभी है। हर वक्त लोभी नहीं, किसी वक्त अहंकारी है। हर वक्त अहंकारी नहीं, किसी वक्त कामी है। विचारों में यही चलता है, सोच में यह चलता है। मोह और क्रोध यह नहीं चलते, यह उकसाहट से पैदा होते हैं। अहंकार वासना और अहंकार पूर्ति में कोई सहायक हो, उस पर मोह आ जाता है, प्यारा लगता है, अगर कोई रुकावट खड़ी कर दे तो क्रोध आ जाता है। जिसने कामपूर्ति, लोभपूर्ति में मदद कर दी, उस पर मोह आ जाता है। जिसने रुकावट खड़ी कर दी, उस पर क्रोध आ जाता है।

यह अहंकार वासना बढ़ती जाए, बढ़ती जाए और रुके न तो अहंकारी मनुष्य ज़ालिम हो जाता है। यह लोभ वासना रुके ही न, लखपति हो गया है, करोड़पति हो गया है, अभी भी न रुके तो बेईमान हो जाएगा, ठग हो जाएगा। यह कामवासना सीमा में नहीं है, असीम होती जा रही है, बलात्कारी हो जाएगा, दुराचारी हो जाएगा और असीम कब होती है, जब साधन अधिक मिलें। यदि साधन अधिक हों तो अहंकार की वासना बढ़ती जाएगी। अगर साधन ज़्यादा मिल गए तो लोभ-वासना, कामवासना ज़्यादा बढ़ती जाएगी। महान् चोर व बेईमान हो जाएगा, महान् बलात्कारी हो जाएगा। महान् ज़ालिम हो जाएगा। यह बात भिन्न है कि जो एक व्यक्ति का कत्ल कर दे, हम उसको कातिल कहते हैं अगर जो लाशों की लाशें सिक्खों की बिछा दे, हम उसको मनिस्टर कहते हैं, हुक्मरान कहते हैं, नेता कहते हैं, बादशाह कहते हैं। छोटे कातिल, कातिल होते हैं, बड़े कातिल, बादशाह होते हैं। उनको कोई कातिल नहीं कहता क्योंकि ताकत है। छोटे चोर, बेईमान चोर होते हैं, बड़े चोर हुक्मरान होते हैं, अफसर होते हैं। किसी की जेब काट ली गई है, सौ रुपया छीन लिया है, हो सकता है पकड़ा जाए, जेल की हवा भी खाए। पूरे देश की जेब काटी है और पूरे देश को लूटा है, स्विटज़रलैंड के बैंक भर लिए हैं, किसी ने उसको पकड़ा है, किसी ने जेल में डाला है ? सभी छूट जाते हैं। कानून मकड़ी का जाल है,

छोटे-छोटे कीड़े फँस जाते हैं, हाथी तोड़ कर गुज़र जाते हैं। और कहीं एक-आध बलात्कार किया है, हो सकता है पकड़ा जाए। मगर इतिहास में आता है कि (600) छः सौ बेगमें थीं निज़ाम हैदराबाद की। चार-चार सौ महारानियाँ थीं महाराजाओं की। हैरानी की बात, यह बलात्कारी तो नहीं और क्या हैं ? और कौन-सा दुराचारी होता है ? छः सौ बेगमें और फिर भी नवाब साहिब हैं, कोई दुराचारी नहीं कहता, कोई व्यभिचारी नहीं कहता। जब साधन बढ़ते जाएँ तो मनुष्य बड़ा बलात्कारी होता है। यह बात भिन्न है कि उनको लोग नवाब साहिब कहते हैं। जब साधन बढ़ते जाएँ तो मनुष्य बड़ा लोभी हो जाता है, बड़ा लुटेरा हो जाता है, यह बात भिन्न है कि लोग उनको हुक्मरान कहते हैं। जब साधन बढ़ते जाएँ तो मनुष्य बहुत बड़ा कातिल हो जाता है। ढाई करोड़ व्यक्तियों का कातिल है हिटलर। तीन करोड़ व्यक्तियों का कातिल है माउजे तुंग। यह हुक्मरान, डिक्टेटर, बादशाह हैं, कोई कातिल नहीं कहता इनको।

सम्पन्न देशों ने ज्यादतर नदियों के दोनों तरफ बाँध बनाए हैं। कितनी भी बाढ़ आ जाए, तो भी किसी का घर, किसी की तबाही, किसी की जान का नुक्सान नहीं कर सकती। ऊँचे-ऊँचे बाँध दरियाओं के किनारे बनाए गए हैं। जिन-जिन दरियाओं की लंबाई ज़्यादा है और देश सम्पन्न नहीं है, मुकम्मल बाँध नहीं बना सके, हर वर्ष नदी में सैकड़ों घर, सैकड़ों जानें तबाह होती हैं। हू-ब-हू इन वासनाओं को भी अगर बाँध न लगाए जाएँ तो यह वासनाएँ बड़ी-बड़ी तबाहियों को जन्म देती हैं। जब भी किसी मनुष्य के हाथों मानवता की तबाही होती है तो समझ लेना चाहिए कि इस में वासना की बाढ़ आई हुई है। मूल वासना है काम, जिसको काम-वासना कहते हैं। जन्म काम से हुआ है। जीवन में इसका होना स्वाभाविक है, मगर यह (काम) जीवन भर मनुष्य को दबाए रखता है और फिर अगले जन्म का कारण बनता है। वासना की वजह से ही अगला जन्म प्राप्त होता है। मरे हुए व्यक्ति के सूक्ष्म शरीर के साथ वासना ही रह जाती है। आगे चलकर माता-पिता की वासना, जीव की वासना, इनका सुमेल होकर जन्म हो जाता है। सो मूल कामवासना है। यह किस तरह बढ़ती है। कामवासना बढ़ती है रूप को देख कर। गुरु नानक देव जी फुरमाते हैं :

रूपै कामै दोसती भुखै सादै गंढु॥

एक उर्दू के शायर का बड़ा सुन्दर कथन है:

जब हुस्न नहीं तो इश्क भी पैदा नहीं होता।
बुलबुल गुल-ए-दीवार पर शैय्दा नहीं होती।

दीवार पर किसी चित्रकार ने फूल बनाया है, बुलबुल नग़में नहीं अलापती। उसके लिए तो वास्तविक फूल चाहिए। परन्तु मनुष्य की वासना अगर प्रगाढ़ हो, यह चित्र देखकर भी असीम हो जाती है और इतनी प्रधान हो जाती है कि बस चित्र ही इसके लिए काफी है। यही कारण है कि इस युग में कामुक चित्रों की चारों तरफ भरमार है। फिल्मों में, तरह-तरह के मैगज़ीनों में, दूर क्यों जाएँ, खुजराहो के मंदिर धार्मिक मंदिर कहलाते हैं, मगर असल में काम के ही मंदिर हैं। कोनार्क के मंदिर काम के ही मंदिर हैं। यह वासना इतनी व्यापक हुई कि संसार में, बाज़ार में, यहाँ तक कि मंदिरों में इसकी छाप देखी जा सकती है। गुरु अर्जुन देव जी महाराज सहसक्रिती श्लोकों में इस तरह फुरमान करते हैं:

हे कामं नरक बिस्रामं बहु जोनी भ्रमावणह॥

(अंग १३५८)

बहुत सारी योनियों में भटकने की वजह काम-वासना है, ठीक है जन्म काम से है, यह जीवन में रहेगा। प्रकृति ऐसा चाहती है, ताकि इससे भी कोई जीवन हो सके, ऐसा प्रकृति ने एक विधान बनाया है। जैसे पानी जीवन है, अगर पानी बाढ़ की शक्ल में हो तो पानी बर्बादी का कारण बन जाता है। चूल्हे में आग जले तो भोजन बनता है, मगर सीमा का उल्लंघन करके यदि यही आग लगे मकानों को, दुकानों को लग जाए तो घरों के घर, गाँवों के गाँव, शहरों के शहर जल कर राख हो जाते हैं। पवन सीमा में चले तो जीवन है, मगर तूफान बन जाए तो पेड़ों की जड़ें उखाड़ देती है, बस्तियों को भी उजाड़ में बदल कर रख देती है। पवन जीवन भी है, पवन मृत्यु भी है। अग्नि जीवन भी है, अग्नि मृत्यु भी है। पानी जीवन भी है, पानी मृत्यु भी है। इसी तरह वासना जीवन भी है, ज़रूरत भी है, मगर मृत्यु भी है। सीमा से बड़ी हुई वासना मृत्यु है। सीमा से बड़ी वासना असीम बाढ़ बन जाए तो शील, संयम, शर्म, हया, सभी बह कर चला जाता है। काम-

वासना ग्रस्त मनुष्य के हृदय में शील, संयम नहीं होता। बिल्कुल गधे की तरह, पशु की तरह लगता है। संयम से बढ़ी हुई काम-वासना मानसिक हालात को डावाँडोल कर सकती है, बड़े-बड़े योगी, तपीश्वर, जपीश्वर, जिन्होंने कुछ तो लोभ और अहंकार को काबू तो किया था, मगर काम-वासना को वश में न कर सके और भ्रष्ट हो गए। सप्त शृंग ऋषि भ्रष्ट हो गए। योग मत के जन्मदाता मछन्दर नाथ और तीन महान् देवते ब्रह्मा, विष्णु और महादेव भी। मोहिनी रूप पर शिवजी मोहित हुए और विष्णु मोहित हुए। ब्रह्मा जी की कथा ही निराली है, यह तो अपनी बेटी का सुन्दर रूप देख कर ही वासना-ग्रस्त हो गया था। भाई गुरदास जी लिखते हैं:

चारे बेद वखाणदा चतुरमुखी होइ खरा सिआणा॥
लोकां नू समझाइदा देखि सुरसती रूप लोभाणा॥

चोटी का दार्शनिक, फिलास्फर, लेखक, कवि और जीवन के चारों पहलुओं में ध्यान देने वाला, जिसे चतुरानन भी कहते हैं, चार मुखियों का चतुरानन, चारों तरफ देखने वाला, इतनी सूक्ष्म-दृष्टि रखने वाला, अपनी बच्ची का रूप देखकर वासना-ग्रस्त होता है। यह वासना इतना अन्धा कर देती है कि फिर कुछ दिखाई नहीं देता। ब्रह्मा जैसे दार्शनिक को दिखाई नहीं देता कि यह मेरी लड़की है। इन्द्र जैसे बुद्धिमान को यह नहीं दिखाई देता कि यह गौतम ऋषि की नार (पत्नी) अहल्या है। एक चतुर और सूझवान, एक महान् ऋषि की स्त्री है। वासना इतना अन्धा कर देती है फिर कुछ दिखाई नहीं देता।

काम-वासना के साथ जो अत्यंत वासना है, वह है लोभ-वासना। जो है उस पर निगाह नहीं है, जो नहीं है उस पर निगाह है। इसलिए लोभी कभी भी संतुष्ट नहीं हो सकता और सदा तृष्णालु रहता है और अगर वासना पूर्ति के साधन बढ़ते जा रहे हैं तो वासना और आगे बढ़ती जाएगी, वासना रुकती नहीं है।

कहते हैं दरिया-ए-सिंध के तट पर एक संन्यासी लेटा हुआ था। सिकन्दर की सेना गुज़री, ऊँटों पर, हाथियों पर सवार और पैदल, लम्बा चौड़ा लश्कर गुज़रा। आखिरी टुकड़ी में सिकन्दर खुद था। देख कर बड़ा दंग रह गया कि इतनी धूल उड़ रही है, इतना मेरा लश्कर गुज़रा है, मगर इसके आराम में कोई फर्क नहीं पड़ा। उसी तरह लेटा हुआ

है। सिकन्दर पास गया, उसकी मस्ती देखने के लिए, उसकी बेपरवाही देखने के लिए, तो जैसे पास गया, यह फकीर कहता है, सिकन्दर, कहाँ चले हो? सिकन्दर कहता है, फकीर साईं, हिन्दुस्तान को फतह करने चला हूँ। अच्छा, जब तुम हिन्दुस्तान को फतह कर लोगे, जीत लोगे, फिर क्या करोगे? सिकन्दर इस सवाल के जवाब के लिए तैयार नहीं था और ऐसा सवाल हो सकता है, यह उसकी सोच में भी नहीं था। फिर भी उसने सोचकर जवाब दिया, मैं फिर कोई और मुल्क फतह करूँगा। कोई हाथ पर हाथ रखकर बैठूँगा नहीं। वह फकीर कहता है, अगर तुमने वह मुल्क भी फतह कर लिया तो फिर क्या करोगे? बुद्धिमान व्यक्ति था सिकन्दर, भई यह सवाल तो चलता ही जाएगा, चलता ही जाएगा। फिर भी उसने हिम्मत करके जवाब दिया, मैं कोई और मुल्क जीतने जाऊँगा। अच्छा मान लेते हैं, अगर तूने वह कल्पित मुल्क भी फतह कर लिया तो फिर क्या करोगे? खीझ कर और नाराज़ होकर सिकन्दर कहता है मैं पूरी दुनिया को फतह करूँगा। एक चप्पा भी ज़मीन नहीं रहने दूँगा, जो मेरी मुट्ठी में न हो। भीतर से अब सिकन्दर खुश हो गया, भई ठीक जवाब दिया है। मगर फकीर, फकीर था, उसने कहा, सिकन्दर, चलो अगर तुम सारी दुनिया फतह कर लो, इसी तरह भी हो जाए, फिर तुम क्या करोगे? हैरान हो गया सिकन्दर, यह तो सवाल फिर आगे चला गया। कहने लगा, फकीर साईं, फिर हम आराम करेंगे। फकीर कहने लगा, तुम इतने झगड़े, इतने झंझट कर के आराम करोगे, हम आराम कर रहे हैं। तुम हज़ारों झगड़े कर के आराम करोगे, हम विश्राम में हैं। यह लोभ वासना व्यक्ति को मरते दम तक भगाती है। यह लोभ तृष्णा बन जाती है और तृष्णा आग की तरह है और कभी आग की लकड़ियों से भूख मिटी है, कितनी भी डालो। इसी तरह तृष्णा तृप्त नहीं होती। अहंकार-वासना, लोभ-वासना, काम-वासना बढ़ती ही जाती है, बढ़ती ही जाती है।

अब मैं और भी अर्ज़ करूँ, प्रतिदिन मनुष्य की उम्र बढ़ने के साथ-साथ वासना भी बढ़ती है। जैसे-जैसे बड़ा हो रहा है, इसका लोभ भी बड़ा हो रहा है। इसका काम भी बड़ा हो रहा है, इसका अहंकार भी बड़ा हो रहा है या फिर ऐसे कहो कि जितनी जिसकी आयु बड़ी है, उतना ही बड़ा कामी है, उतना ही बड़ा लोभी है, उतना ही बड़ा

अहंकारी है। गुस्ताख़ी मुआफ, एक बुजुर्ग मनुष्य के भीतर जितना काम होता है, जितना लोभ होता है, जितना अहंकार होता है, साधारणतय: एक युवा मनुष्य के भीतर, एक बच्चे के भीतर नहीं होता। बड़े-बड़े बूढ़े राज-गद्दियों पर बैठे हैं। मैंने तो कई दफा देखा है कि चार व्यक्ति उठा कर कुर्सी पर बिठाते हैं, चार व्यक्ति कुर्सी से उठा कर एक तरफ करते हैं। मगर कुर्सी नहीं छोड़नी। एक और अर्ज़ करूँ, एक युवा मनुष्य के भीतर वासना युवा होती है, वह नहीं वृद्ध होती। शरीर वृद्ध हो गया है, मगर वासना युवा है। यह बात भिन्न है कि वह शरीर निर्बल होने की वजह से इसका इस्तेमाल नहीं कर सकता और शरीर खत्म हो जाता है, मगर वासना खत्म नहीं होती। जैसे मैं पीछे अर्ज़ कर चुका हूँ कि यही वासना अगला जन्म करवा देती है। भाई साहिब भाई गुरदास जी कहते हैं:

जुगि जुगि मेरु सरीर का बासना बधा आवै जावै॥

अगर वासना है तो अगला जन्म होगा और अगर वासना ही मर गई तो अगला जन्म नहीं होगा और जितने समय वासना मौजूद है, मनुष्य जन्मता रहेगा, मरता रहेगा, जन्मता रहेगा, मरता रहेगा और यह जन्म और मृत्यु सबसे बड़ा दुख है। गुरु अर्जुन देव जी हमें अरदास करने का तरीका बताते हुए फुरमाते हैं:

प्रभ जनम मरन निवारि॥ हारि परिओ दुआरि॥

(अंग ८३७)

जप-तप का फल है, जन्म मरण से रहित हो जाना। इसे क्यों बड़ा दुख माना गया है। कोई विद्यार्थी प्रथम कक्षा के पश्चात् दूसरी, तीसरी से दसवीं और आगे तक पढ़ाई कर ले और उसके पश्चात् उसको कहें कि तू अब फिर प्रथम कक्षा में बैठ और इससे बड़ा दुख और उसको क्या होगा ? अगर कोई मनुष्य जन्मे, पढ़े-लिखे, बड़ा हो, उसके बच्चे हों, उनका पोषण करे, पढ़ाए-लिखाए, काम-काज और सभी काम करके मर जाए और उसको कहा जाए कि तू फिर जन्म ले, फिर पढ़-लिख, फिर तेरे बच्चे हों, जो काम तू पीछे कर चुका है, वह फिर कर। यह तो उस विद्यार्थी की तरह है, जिसको मुकम्मल पढ़ाई करने के पश्चात् फिर प्रथम कक्षा में बैठने के लिए कह दिया जाए। इससे

बड़ा कोई दुख नहीं है और हम यह काम बार-बार कर रहे हैं, बार-बार जन्मते और मरते हैं। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं कि जन्मता है, मरता है, जन्मता है, मरता है:

जमि जमि मरै मरै फिरि जंमै॥
बहुतु सजाइ पइआ देसि लंमै॥

(अंग १०२०)

यह वासना बार-बार जन्म लेने पर मजबूर कर देती है। अगर मरते वक्त मेरा शरीर मर रहा है और वासना नहीं मरी, अगला जन्म होगा। वह वासना लोभ-वासना हो सकती है, अहंकार-वासना हो सकती है या काम-वासना हो सकती है। लोभ-वासना है तो मरते वक्त मुझे मकान याद आएँगे, संचित धन-संपदा याद आएगी। अहंकार-वासना है तो प्रभुता याद आएगी। काम-वासना है तो स्त्री याद आएगी या स्त्री को पुरुष याद आएगा और अगर वासना ही खत्म हो गई हो तो जन्म मृत्यु से रहित होकर प्रभु में ही समा जाएँगे। भक्त कबीर जी भी कहते हैं:

ऐसे घर हम बहुतु बसाए॥
जब हम राम गरभ होइ आए॥ *(अंग ३२६)*

हे प्रभु! ऐसे घर हमने कई दफा बसाए, अब मैंने फिर ऐसा घर नहीं बसाना:

बहुरि हम काहे आवहिगे॥
आवन जाना हुकमु तिसै का हुकमै बुझि समावहिगे॥

(अंग ११०३)

वासना हमेशा मनुष्य के मन को दोलायमान रखती है। कोशिश करता है, मनुष्य दान करता है, वासना बेईमान बना देती है। यत्न करता है, मनुष्य सत्संग में आता है, वासना कुसंगी बना देती है। सत्संग में बैठे हुए कुसंगी बना देती है। गुरुद्वारे में बर्तन धोते हुए, झाड़ू देते हुए, जूते साफ करते हुए, यह अहंकार वासना हिंसक बना देती है। जूते साफ करने वालों को मैंने जूते मारते हुए देखा है। बर्तन साफ करने वालों को मैंने व्यक्तियों को साफ करते हुए देखा है। एक गुरुद्वारे में मैंने देखा कि एक प्रेमी जो रोज़ाना गुरु ग्रंथ साहिब को चंवर साहिब की सेवा करता था, एक दिन उसके टाईम पर कोई और प्रेमी सेवा

कर रहा था। चँवर साहिब की सेवा को लेकर ही उनमें तू-तू मैं-मैं हो गई और एक प्रेमी ने वही चँवर साहिब दूसरे के सिर पर दे मारा। हद हो गई, वैसे कहेंगे, हम सेवक हैं, मगर अहंकार करके बड़े-बड़े सेवक आपको गुरुद्वारे, जूते-घर, लंगर-घर में झगड़ते हुए मिल जाएँगे। काम-वासना सदाचारी होते हुए दुराचारी बना देगी। कोई अपने चरित्र से गिरता है काम करके, कोई अपने चरित्र से गिरता है अहंकार करके, कोई अपने चरित्र से गिरता है लोभ करके। आपको गिरे हुए मनुष्य मिलेंगे। किसी को काम ने पछाड़ कर रखा हुआ है तो गिर गया। किसी को लोभ ने पछाड़ कर रखा है तो गिर गया। किसी को अहंकार ने पछाड़ कर रखा है तो गिर गया और किसी को तीनों ने ही पछाड़ कर रखा है। भक्त कबीर जी कहते हैं:

अवरि पंच हम एक जना॥ *(अंग १५५)*

मैं तो अकेला हूँ, यह तो पाँच हैं, इन तीनों के दो सहायक भी हैं—मोह और क्रोध। इन पाँचों ने मुझे दबाया हुआ है। पहले तो मनुष्य एक के साथ भी नहीं लड़ सकता। यह भी मैं अर्ज़ कर दूँ कि एक भी पछाड़ कर रख देगा। ऋषि विश्वामित्र सरीखों के तप भ्रष्ट हो गए सिर्फ काम की वजह से। कईयों के तप भ्रष्ट हो गए लोभ की वजह से, अहंकार की वजह से।

जब मनुष्य का मन प्रभु-चिंतन में लीन होता है, प्रभु-सोच में लीन होता है तो आहिस्ता-आहिस्ता वासना प्रार्थना बनती है। सो जैसे प्रार्थना, अरदास भीतर से पैदा हो, वासना कमज़ोर होती है, सीमा में होती है और एक दिन भावना की भीतर से ऐसी बाढ़ आती है, वासना बह जाती है। वासना मर जाती है, फिर वह दानी, दानी तो है, बेईमान नहीं है। वह सेवक, सेवक तो है, हिंसक नहीं है, अहंकारी नहीं है, वह तो नम्रता की मूर्ति है। कल तक जिस को किसी के सिर पर बैठ कर खुशी होती थी, हरेक को अपने कदमों के नीचे रख कर प्रसन्नता मिलती थी, आज हरेक के कदमों की खाक बन कर प्रसन्नता मिलती है, ऐसा मनुष्य जगत् के चरणों की धूल बन जाता है। प्रभु-चिंतन के साथ जिसका लोभ संतोष बन गया है और वासना प्रार्थना बन गई है, उसके सभी पदार्थ मिट्टी समान हैं, सभी कुछ मिट्टी दिखाई देने लग जाता है और जिसकी काम-वासना की शक्ति प्रार्थना बन जाती

है उसको हर कामिनी, माँ दिखाई देती है। भक्त नामदेव जी कहते हैं, जब ऐसा हो जाए तो ऐसा मनुष्य हरि का रूप हो जाता है:

पर धन पर दारा परहरी॥
ता कै निकटि बसै नरहरी॥ *(अंग ११६३)*

महांकवि तुलसी दास जी कहते हैं:

पर धन कउ मिट्टी समझे पर त्रिया मात समान।
इतने पर हरि न मिले तो तुलसी दास जमान।

सतिगुरु जी मेहर करें, हम इन वासनाओं को प्रार्थना का रूप दे सकें, प्रभु-चिंतन कर सकें, क्योंकि यह वासना खत्म हो जाए। गुरु की कृपा के साथ, बख्शिश से ही यह खत्म हो जाएगी।

बहुरि हम काहे आवहिगे॥
आवन जाना हुकमु तिसै का हुकमै बुझि समावहिगे॥
(अंग ११०३)

परमात्मा की समझ

किसी भी वस्तु की महिमा और मूल्य समझ के साथ है, वैसे नहीं है। पशु के सम्मुख सोना पड़ा हो, मगर उसको समझ नहीं है तो सोना, सोना नहीं है। सोना समझ के साथ ही सोना है, वैसे नहीं है। हीरा समझ के साथ हीरा है, वैसे कौड़ियों से भी खोटा है। समझ है तो सोना, सोना है। हीरा, हीरा है। चाँदी, चाँदी है। समझ है तो परमात्मा, परमात्मा है, वैसे नहीं है। जानवर के आगे सोना रख दें और घास रख दें वह घास खाएगा, सोना नहीं। हालांकि उस सोने से कितनी घास खरीदी जा सकती है। मगर जानवर को सोने की समझ नहीं, घास की समझ है क्योंकि सोने की समझ नहीं तो सोने की कोई कीमत नहीं। मनुष्य को पदार्थों की समझ है, इसलिए पदार्थों की तो कीमत है। परिवार की समझ तो है, इसलिए परिवार की तो कीमत है। मगर परमात्मा की समझ नहीं है। तो परमात्मा, परमात्मा नहीं है। वैसे पशु को परिवार की भी समझ नहीं है। ननिहाल, पितृत्व और ससुराल यह तीनों ही प्रणालियाँ होती हैं रिश्तों में। रिश्तेदार या ननिहाल में से या पितृत्व में से या फिर ससुराल में से होगा। परिवार पशुओं के भी होते हैं। परिवार के होते हुए पशु परिवार के बिना जीता है, क्योंकि समझ नहीं है। निरंकार के होते हुए मनुष्य निरंकार के बिना जीता है, क्योंकि समझ नहीं है। पशु की ज़िन्दगी बताती है, उसका व्यवहार बताता है कि उसको परिवार की समझ नहीं है। मनुष्य की भी ज़िन्दगी बताती है कि इसको निरंकार की समझ नहीं है। वह महा-आनंद है और यह दुख में जी रहा है। वह महां-रस है और यह नीरसता में जी रहा है। वह निर्वैर है और यह वैर में जी रहा है। वह समदृष्टि है और यह भेदभाव में जी रहा है। मनुष्य की ज़िन्दगी बता रही है कि निरंकार के होते हुए यह निरंकार के बिना जी रहा है। इसको परिवार की समझ तो है, निरंकार की नहीं। धन की समझ तो है धर्म की नहीं। समझ

के साथ कीमत बनती है, इसके ऊपर मैं एक ऐतिहासिक गाथा सुनाता हूँ, ताकि बात पूरी हो जाए।

आँध्र प्रदेश की पहाड़ियों पर एक गडरिया भेड़ें चराता था। सात-आठ सौ भेड़ें उसकी अपनी थी। उनका दूध बेचता था, उनकी ऊन बेचता था और भेड़ें भी बेचता था। रोज़ाना भेड़ों को चराने के लिए ले जाता था। आज जब शाम को भेड़ें चरा कर घर को वापिस आ रहा था तो रास्ते में उसे एक चमकता हुआ पत्थर दिखाई दिया। उसने उसको उठा लिया और घर आकर अपने बच्चों को खेलने के लिए दे दिया। सुबह-शाम उसके बच्चे इसके साथ खेलते। आज एक सौदागर आया, उसको दो भेड़ों की ज़रूरत थी, पुराना ज़माना था, तब नोट नहीं चलते थे, सिर्फ सिक्के होते थे। दो-दो रुपये में उसने दो भेड़ें खरीदीं। पुराना ज़माना था, तब रुपए की बड़ी अहमियत थी। चार रुपये देकर उसने दो भेड़ें ले लीं और जब जाने लगा तो अचानक उसकी नज़र उस पत्थर के टुकड़े पर पड़ गई, जिसके साथ गडरिये के बच्चे खेल रहे थे। यह सौदागर पूछता है गडरिये को, यह महान् पत्थर आपको कहाँ से मिला? गडरिया भागता हुआ गया और बच्चों से वह टुकड़ा ले लिया। उसने कहा, आपने इसको महान् कहा है, आपको अच्छा लगा है, आप ले जाओ। छः महीने से मेरे बच्चे इसके साथ खेल रहे हैं, अब आप अपने बच्चों को दे देना, वह खेलेंगे। जेब में हाथ डाला सौदागर ने, सौ रुपये की थैली थी उसके पास, गडरिये की हथेली पर रख कर बोला, 'यह नज़राना है और मेरे पास है नहीं।'

जब वह पत्थर का टुकड़ा ले कर चला गया तो गडरिया सोचता है भाई कितना मूर्ख है। भेड़ खरीदता है दो रुपये की और पत्थर के टुकड़े के देता है सौ रुपये। बड़ा मूर्ख है, बड़ा मूर्ख। उसको कौन बताए कि वह जौहरी था।

उसने तराशा और मुगल शहंशाह को भेंट किया। उस चमकते पत्थर का नाम पड़ा कोहिनूर। पहाड़ों का नूर कोहिनूर। होते-होते यह हीरा मुगल बादशाहों से महाराजा रणजीत सिंघ के पास आया और फिर अंग्रेज़ों के पास चला गया। आज यह लंदन म्युज़ियम में पड़ा है। इसके दो भाग किए गए हैं। एक भाग ऐलिज़ाबैथ के ताज में जड़ित है, ताज भी वहीं पड़ा है और दूसरा भाग वैसे ही पड़ा है। चमकते हैं, वहाँ

जान-बूझ कर उन्होंने अन्धेरा कर रखा है, क्योंकि लोगों को पता चल सके, चमकता है। 10 (दस) पौंड टिकट है। अपने देश में एक पौंड 70 रुपए का है, आजकल हज़ारों लोग रोज़ देखने जाते हैं। अपने देश के मुताबिक लाखों की आमदनी है, सिर्फ देखने की। जिसको गडरिये ने वैसे ही फेंक दिया था, उसके बच्चे खेलते थे।

सो समझ है तो हीरा, हीरा है, वैसे नहीं है। समझ है तो परमात्मा, परमात्मा है। अगर समझ नहीं तो परमात्मा, परमात्मा नहीं है। खेल सारा समझ का है।

सिंघ और कौर

हमारा आधा नाम तो कलगीधर पातशाह ने खुद रखा है और आधे नाम का चुनाव आप खुद करते हो। भई अब बच्चे का नाम रखना है, तो सिंघ तो गुरु ने रख ही दिया है। आधे नाम का चुनाव कर लो। मगर दुर्भाग्य है, यह देख लो विवाह-शादियों के जो कार्ड छपते हैं, उनके ऊपर गुरु ने जो नाम दिया है, वह तो है ही नहीं, जो नाम हमने चुने हैं, वही हैं और कई दफा तो भुलावा भी हो जाता है कि इनमें से लड़का कौन है और लड़की कौन है। जब यह लिखा होता है कि मनजीत का विवाह सुरजीत के साथ। सुरेन्द्र का विवाह गुरेन्द्र से। बताएँ अब इनमें से लड़का किसको कहें? हैरानी होती है, जो नाम गुरु ने चुना है, वह नाम मनुष्य को अच्छा नहीं लगता और जिस को गुरु का चुनाव, गुरु की देन अच्छी नहीं लगती। यहीं से ही पता चलता है कि तुम्हारा गुरु के साथ कितना प्यार है। गुरु के प्रति कितनी श्रद्धा है।

तालमेल

लोगन रामु खिलउना जानां॥ *(अंग ११५८)*

कबीर जी कहते हैं, लोगों ने परमात्मा को खिलौना ही समझ रखा है। साधारण मनुष्य के लिए सभी धार्मिक कर्म समय व्यतीत करना है। मैंने 60 प्रतिशत गुरुद्वारे अमेरिका के देखे हैं, जो समूह होता है, सभी सोशिल लोग ही होते हैं, कोई धार्मिक नहीं। लंगर में बैठ कर दो-दो घण्टे गप्पें मारेंगे और अगर कीर्तनिए ने कभी पाँच मिनट ज्यादा लगा दिए तो कहेंगे कि पाँच मिनट ज्यादा क्यों लगा दिए। तू दो घण्टे गप्पे हाँक रहा था, नीचे लंगर हाल में, वहाँ तूने कोई गिनती नहीं की, नीचे दो घण्टे इस तरह गुजार दिए, जैसे दो सैकिण्ड। कारण ? वहाँ बातें की सामाजिक, कारोबारी, निन्दा-चुगली की और संसारी। निरंकार की बात से तालमेल नहीं बैठता। मालूम है रस कहाँ मिलता है ? यहाँ तालमेल बैठ जाए। तालमेल न बैठे, रस नहीं मिलता। गुरुद्वारे आकर भी कीर्तन से, बाणी में मन नहीं लगता। कारण ? तालमेल नहीं बैठता। मैं तो देखता हूँ कि लोग अखण्ड पाठ अपने घर में रख तो लेते हैं मगर उस कमरे में जाना ही भूल जाते हैं कि कहीं सुनना न पड़ जाए, क्यों ? बाणी से तालमेल नहीं बैठता, बाणी से तालमेल क्यों नहीं बैठता ? क्योंकि बाणी निर्वैर की है। हृदय वैर से भरा पड़ा है, बाणी समदृष्टि की है, हृदय भेदभाव से भरा पड़ा है। बाणी निरंकार की है, हृदय संसारी है। एक अश्लील गीत से तालमेल बैठ जाता है। एक बार मैं मलेशिया की तरफ गया हुआ था। वहाँ गुरुद्वारे में, जहाँ गुरमति का समागम था, हैरानी हुई मुझे कि संगत बहुत ही कम थी, वैसे दो-ढाई हजार का समूह होता था। पूरा इन्तजाम था, मगर संगत न आई। चार-पाँच जत्थे और वह भी नामवर, दरबार साहिब से भी कुछ पहुँचे हुए थे। खैर, मैं अपनी हाजरी भर कर गुरुद्वारे से जा रहा था, क्योंकि रिहायश का इन्तज़ाम कुछ दूरी पर था। मैंने स्वाभाविक उस सज्जन से पूछ

लिया, जो मुझे छोड़ने जा रहा था कि बात क्या है, आज संगत क्यों नहीं आई ? कहने लगा, आज दलेर मेहंदी आया हुआ है, आज कीर्तन-कथा किसने सुननी है। फिर उसने मुझे ही पूछ लिया कि मसकीन जी, ऐसा क्यों हो जाता है ? तो मैंने कहा वहाँ तालमेल बैठ जाता है। हृदय काम से भरा पड़ा है, काम के गीत, तालमेल बैठ गया। हृदय वासना से भरा पड़ा है, वासना के भरे हुए अश्लील गीत, तालमेल बैठ गया। जहाँ तालमेल बैठ गया, रस आ जाता है तो मनुष्य उधर को जाता है। अक्सर मनुष्य गुरुद्वारों में सिर नीचे करके बैठे होते हैं, कारण ? तालमेल नहीं बैठता। एक दिन सफ़र में मैं एक अख़बार में लतीफ़ा पढ़कर हैरान हुआ। वह लिखता है, एक मरीज डाक्टर के पास आया और डाक्टर ने पूछा, क्या तकलीफ है ? मरीज ने कहा और तो कुछ नहीं सिर्फ नींद नहीं आती, कोई दवा दो। डाक्टर कहता है, तू गलत जगह पर आ गया है, अगर नींद नहीं आती तो किसी धार्मिक मंदिर में जाओ, कथा सुन, खुद नींद आ जाएगी। जहाँ तालमेल न बैठे, सिर पर बोझ हो जाता है रस नहीं बनता, नींद आ जाती है। अमृत समय मैंने दरबार साहिब में भी देखे हैं लोग सोते हुए। मैंने कहा हद हो गई, तीन बजे उठे होंगे, स्नान किया होगा, आ गए हैं आसा की वार का कीर्तन सुनने, मगर सोए हैं। जहाँ तालमेल न बैठे, वहाँ रस नहीं बनता और नीरसता में मनुष्य बहुत समय नहीं बैठ सकता।

अहंकार की यात्रा और निरंकार की यात्रा

दो तरह की मनुष्य की ज़िन्दगी हो सकती है—अहंकार के लिए या निरंकार के लिए। अहंकार के लिए जीना क्या है ? नव-खण्ड पृथ्वी मुझे जाने कि मैं कौन हूँ। अहंकार की यह माँग होती है। अहंकार पूरी दुनिया में प्रगट होना चाहता है कि मैं हूँ, मैं हूँ, यह सारी दुनिया जाने। यह नहीं कि एक शहर या एक प्रांत या एक देश के लोग मुझे जाने :

नवा खंडा विचि जानीऐ नालि चलै सभु कोइ॥

(अंग २)

और सभी मेरे साथ मेरे पीछे चलें। सिकन्दर यूँ ही तो नहीं कहता था कि मैंने पूरी दुनिया जीतनी है ताकि मुझे पूरी दुनिया जाने कि मैं कौन हूँ। और अगर कोई इतनी शक्ति एकत्र नहीं कर सकता तो कम से कम पूरा देश मुझे जाने। मानो अगर पूरा देश नहीं तो सारी कौम, पूरा शहर मुझे जाने और अगर इतनी भी कोई समर्था नहीं प्रगट कर सका तो पूरी बिरादरी, पूरा मुहल्ला तो मुझे जाने। अगर इतने लोग भी मेरे पीछे नहीं आ सकते तो परिवार के सदस्य तो मेरे पीछे चलें। मगर मूल रूप में यही माँग है कि :

नवा खंडा विचि जानीऐ नालि चलै सभु कोइ॥

यह सब अहंकार की यात्रा है।

एक दूसरी यात्रा भी है निरंकार की। मैं मिट जाऊँ, निरंकार प्रगट हो, गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं :

मोकउ कोइ न जानत कहीअत दासु तुमारा॥

(अंग १००५)

भाई साहिब भाई वीर सिंघ जी कहते हैं :

मैनू छुपे रहण दी चाह।

मैं तो छुप जाना चाहता हूँ, मिट जाना चाहता हूँ। मुझे कोई भूख नहीं है कि मुझे कोई जाने। एक ही भूख है कि मैं तुझे जान जाऊँ। यह निरंकार की यात्रा है।

अपने आप को प्रगट करने की लालसा, प्रभु को पीछे फैंकने की बात है। यह जो कुछ भी करेगा, दान, पूजा, पाठ, परोपकार, यह सब अहंकार की यात्रा है। एक खुद को मिटा कर परमात्मा को प्रगट करना, यह निरंकार की यात्रा है। सारे संसार को इन्हीं दो हिस्सों में विभक्त किया जा सकता है—अहंकार की यात्रा या निरंकार की यात्रा। निरंकार की यात्रा कोई विरला ही करेगा, पूरी दुनिया अहंकार की यात्रा करती है। बीज मिटे न तो वृक्ष नहीं बनता। मनुष्य मिटे न तो प्रभु का रूप नहीं होता। निरंकार की यात्रा में खुद को मिटाना पड़ता है। अहंकार की यात्रा में खुद को प्रगट करना पड़ता है।

चित्र-गुप्त

चित्र-गुप्त संस्कृत का शब्द है। इसके अक्षरी अर्थ हैं वह तस्वीर जो गुप्त है। तुम मुझे देख रहे हो, मैं तुम्हें देख रहा हूँ। यह प्रगट चित्र है, मगर मैं भीतर से क्या हूँ, आप भीतर से क्या हो, न मुझे मालूम है न आपको मालूम है। यह गुप्त चित्र है। बाहर से चित्र बहुत साफ हो सकता है। कपड़े साफ पहने हैं, मुख-माथा साफ है, मगर क्या मालूम भीतर चित्र कैसा है, क्योंकि है ही गुप्त। माँ को भी नहीं मालूम कि मेरे बच्चे का चित्र-गुप्त कैसा है। पति को भी नहीं मालूम कि पत्नी का चित्र-गुप्त कैसा है और पत्नी को भी नहीं मालूम कि पति भीतर से क्या है। मेरे भीतर क्या कल्पनाएँ चल रही हैं, तुम्हें क्या मालूम, तुम्हारे भीतर कल्पनाएँ क्या हैं, मुझे क्या मालूम। पास बैठे व्यक्ति के बारे में आप गलत सोच सकते हो और उसको मालूम भी नहीं होगा।

इसलिए हर व्यक्ति के दो-दो रूप हैं। हो सकता है जो बाहर से शरीफ नज़र आता हो, भीतर से बदमाश हो। हो सकता है जो बाहर से खुद को दास कहता हो, भीतर से अहंकारी हो। हो सकता है जो बाहर से सत्यवादी नज़र आता हो, भीतर से पक्का झूठा और फरेबी हो। पशु के यह दो रूप नहीं होते, कायनात के भीतर सिर्फ व्यक्ति ही है, जिसके दो रूप हैं। पशु जो भीतर से है वहीं बाहर से है। कुत्ता भीतर-बाहर से कुत्ता है। शेर भीतर-बाहर से शेर है। गाय भीतर-बाहर से गाय है। साँप भीतर और बाहर से साँप है। साँप को देखकर उसके स्वभाव का पता चल जाता है। शेर को देखकर उसका स्वभाव मालूम हो जाता है। कुत्ते को देखकर उसका किरदार मालूम हो जाता है। मगर व्यक्ति को देखकर मालूम नहीं होता कि यह भीतर से क्या है और बाहर से क्या है। इसलिए हमें यह कहने की ज़रूरत नहीं पड़ती कि ऐ कुत्ते तू कुत्ता बन जा, ऐ गाय तू गाय बन, ऐ साँप तू

साँप बन जा, ऐ सूअर तू सूअर बन जा, ऐ शेर तू शेर बन जा। मगर ऐसा रोज़ाना कहना पड़ता है कि ऐ मनुष्य तू मनुष्य बन जा, ऐ इन्सान तू इन्सान बन जा, क्योंकि यह बाहर से मनुष्य है, भीतर से नहीं है और यह भीतर से क्या है :

करतूति पसू की मानस जाति ॥ *(अंग २६७)*

अन्तर सिर्फ इतना है कि आजकल जंगलों में पशु कम होते जा रहे हैं और शहरों में बढ़ते जा रहे हैं। चार पैरों वाले जानवर कम होते जा रहे हैं, दो पैरों वाले जानवर बढ़ते जा रहे हैं। अंतिम समय जब बाहर के चित्र को जला दिया जाता है तो फिर आगे जो गुप्त तस्वीर है, भीतर के संस्कारों का जो समूह है, वही जाता है। वह जैसा होगा, वैसा ही मनुष्य को जन्म मिल जाएगा। वह जो चित्र-गुप्त आगे जाता है, उसके साथ ही फैसला होना है।

चित्र गुपतु जब लेखा मागहि
तब कउणु पड़दा तेरा ढाकै ॥ *(अंग ६१६)*

यहाँ जो कुछ तू करता रहा है, उस पर पर्दा डालता रहा है। अपनी करतूतों का दूसरों को मालूम नहीं होने दिया और जब यह शरीर का पर्दा भी हट गया और बाकी पर्दे भी जल गए तो बता आगे अब कौन पर्दा डालेगा ? गुरु जी कहते हैं :

नंगा दोजकि चालिआ ता दिसै खरा डरावणा ॥
(अंग ४७१)

प्रभु ने हमारे आंतरिक कर्मों को देखना है। इसलिए हमें अपने चित्र-गुप्त को मैला नहीं होने देना चाहिए, भाव किसी का बुरा नहीं सोचना चाहिए, अपने मन में किसी भी तरह मलिन विचार नहीं आने देने चाहिएँ और सब का भला माँगना चाहिए।

नानक नामु चड़दी कला ॥
तेरे भाणे सरबत दा भला ॥

संकल्प–विकल्प

हरेक मनुष्य के हाथ दो हैं, पैर दो हैं, कान दो हैं, नासिका के सुराख भी दो हैं। इसी तरह ज़बान तो एक है, मगर काम दो करती है, एक तो बोलती है और दूसरा भोजन का रस लेती है। इसी तरह मनुष्य के मन भी दो हैं—इन-मन और उन-मन। एक मन संकल्प पैदा करता है, दूसरा मन विकल्प पैदा करता है। संकल्प इन-मन से पैदा हुआ, विकल्प उन-मन से पैदा हो गया। संकल्प के समक्ष ही विकल्प खड़ा है। अगर संकल्प पैदा हुआ कि ब्रह्ममुहूर्त जागना है, नाम जपना है। रात को संकल्प कर के सोया है। मगर ब्रह्ममुहूर्त हो गया और आँख भी खुली है मगर विकल्प पैदा हो गया, कल देखेंगे, मुलतवी करते हैं, कल पर छोड़ते हैं। यह तो एक उदाहरण है मगर हर वक्त मन दो तरफ होता है, संकल्प और विकल्प। संकल्प है चोरी करनी है, किसी की जेब काटनी है, किसी को ठगना है, मगर एक विकल्प भी है कि यह बात ठीक नहीं है, किसी को धोखा देना यह ठीक नहीं है। यह संकल्प-विकल्प हर वक्त चलते हैं और संकल्प-विकल्प में से एक बलवान होता है, एक कमज़ोर होता है। जैसे दो हाथों में से एक हाथ अधिक बलवान होता है। किसी का दायाँ हाथ ज़्यादा काम करता है, किसी का बायाँ। किसी का बायाँ हाथ सुन्दर काम करता है, दायाँ इतना नहीं। बाएँ हाथ से कई बहुत सुन्दर लिख लेते हैं। हारमोनियम भी बाएँ हाथ से बजा लेते हैं, मगर दाएँ हाथ से नहीं। कई पूरा काम दाएँ हाथ से ही करते हैं, बाएँ से नहीं कर सकते। इसी तरह ही दो पैरों में से भी एक पैर में मज़बूती ज़्यादा होती है। इसी तरह संकल्प और विकल्प में से एक बलवान और दूसरा कमज़ोर होता है। अगर संकल्प कमज़ोर हो और विकल्प ताकतवर हो तो मनुष्य विकल्प ही करेगा और यदि विकल्प कमज़ोर हो और संकल्प ताकतवर हो तो मनुष्य संकल्प ही करेगा। यदि कोई निर्मल कर्म करने का संकल्प है, मगर विकल्प बलवान है तो मनुष्य

निर्मल कर्म करने से वंचित रह जाएगा। अगर संकल्प बुरा कर्म करने का ताकतवर है और विकल्प कमज़ोर है तो मनुष्य बुराई कर बैठता है। रोज़ाना का कुसंग, गलत पुस्तकों का पाठ-पठन, गलत सोसाइटी, मनुष्य के बुरे संकल्प को प्रबल करती है और मनुष्य रोज़-रोज़ बुरा होता जा रहा है। उसके शुभ विकल्प कमज़ोर होते जाएँगे। ऐसा तो कोई ठग, चोर, कातिल या डकैत नहीं, जिसके भीतर संकल्प हो कि ठगी करनी है, कत्ल करना है और विकल्प पैदा न हो, होता है। और ऐसा कोई सन्त नहीं है, जिसके भीतर शुभ संकल्प तो हैं, मगर बुरे विकल्प पैदा न होते हों। फर्क सिर्फ इतना है कि सन्त इसलिए सन्त दिखाई दे रहा है, क्योंकि उसके बुरे विकल्प कमज़ोर हैं और शुभ संकल्प बलवान है, मगर ठग, चोर, दुष्ट इसके लिए दुष्ट हैं, क्योंकि उसके बुरे संकल्प तो बलवान हैं, मगर शुभ विकल्प कमज़ोर हैं। जीवन इस तरह ही संकल्प और विकल्प में चलता रहता है। अगर कोई बुरा संकल्प पैदा हो गया है तो उस बुराई को रोकने के लिए विकल्प चाहिए अगर यह विकल्प बलवान हो गया तो मनुष्य बुराई नहीं कर सकेगा। बच जाएगा बुराई करने से। अगर कोई अच्छा संकल्प पैदा हो गया हो तो मनुष्य को चाहिए कि तुरन्त ही कर ले, कहीं विकल्प हावी होकर वह काम करने से रोक न दे, अगर बुरा संकल्प पैदा हो गया है तो उसमें कुछ देरी कर ले, शायद शुभ विकल्प तुझे बुरा करने से रोक दे।

मैं एक लेखक की आप-बीती पढ़ रहा था, वह लिखता है कि किसी ने उसको एक चिट्ठी लिखी और उसमें बड़े अपशब्द और नुक्ताचीनी ही की हुई थी कि तुम्हारा अमुक लेख गलत है, आपने जो अमुक लेखनी लिखी है, वह सच्चाई से परे है, आप मूर्ख हैं और खुद को विद्वान कहलाते हो। आपने यह गलत लिखा है, आपने वह गलत लिखा है। संक्षिप्त कि हर लाईन में गालियाँ ही थीं और आखिर में यह था कि अगर तुम सचमुच ही सही हो तो मेरी चिट्ठी का जवाब ज़रूर देना, अन्यथा मैं समझूँगा कि तुम कायर हो। स्पष्ट हो जाएगा आप गलत हो।

यह लेखक लिखता है कि मैं उसी वक्त बैठ गया, चिट्ठी लिखने और जितनी गालियाँ उसने लिखी थीं, मैंने उससे भी ज्यादा उसको लिखीं। उसने लिखा कि था कि आपको लिखने का कोई तरीका नहीं आता, मैंने लिखा कि तुम्हें पढ़ने का कोई तरीका नहीं आता। इस तरह

मैंने गाली का जवाब गाली में दिया। चिट्ठी लिख दी, मगर अभी पोस्ट नहीं की। रात पड़ी रही, सुबह जगा, जो लिखा था मन उससे सहमत नहीं हुआ कि गालियों का उत्तर गालियों से नहीं देना चाहिए। फिर मैंने पुनः चिट्ठी लिखी, गालियाँ मैंने निकाल दीं, मगर लफ्ज़ों में सख्ती थी। यह चिट्ठी लिखने के पश्चात् ख्याल आया कि एक रात देरी करने से सभी गालियाँ निकल गई हैं। एक दिन और रख लेते हैं, शायद यह सख्ती भी निकल जाए। फिर शाम को एक और पत्र लिखा और यह सख्त बोल भी निकाल दिए, कोमलता आ गई। वह कहता है मैंने लिखा कि मुझे जितनी समझ थी उतना ही मैंने लिखा है, ठीक है, मुझ से गलत लिखा गया होगा, मैं मुआफी माँगता हूँ।

काश! किसी ने हमें बुरा कहा हो, अपशब्द कहे हों और हम कुछ देरी लें और हम गालियाँ निकालने से बच जाएँगे। लड़ाई-झगड़े से बच जाएँगे, मगर नहीं, हम तत्क्षण करते हैं। बुराई का जवाब हम उसी वक्त ही देते हैं।

मगर अच्छा करने के लिए हम आलस्य कर देते हैं। बुराई के समय हम शेर बन जाते हैं, मगर अच्छाई के समय हम गीदड़ बन जाते हैं। बुराई के समय हम शेर की तरह ताकतवर होकर उसी समय बुराई करते हैं, मगर शुभ काम करना हो तो हम गीदड़ की तरह कमज़ोर हो जाते हैं, भई फिर कर लेंगे। चाहिए तो यह है कि धर्म कमाने में हमें देर नहीं करनी चाहिए, मगर पाप करते समय कुछ देरी कर लें, कुछ सोच लें, शायद बचाव हो जाए। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं :

नह बिलंब धरमं बिलंब पापं॥ *(अंग १३५४)*

दो मनों को एक कर लो। एक मन से मुराद है कि जैसा संकल्प हो वैसा ही विकल्प हो। संकल्प और विकल्प एक हो जाएँ। जैसे हम दो पैरों को मार्ग एक देते हैं, यह नहीं कि दायाँ पैर दाईं ओर जाए और बायाँ पैर बाईं तरफ जाए। दो आँखों को दृष्टि एक देते हैं। दो कानों से शब्द एक सुनते हैं। दो हाथों से काम एक करते हैं, इसी तरह दो मनों को एक करना है। संकल्प-विकल्प एक करने हैं। शुभ संकल्प और शुभ विकल्प ताकतवर करने हैं। बुरे संकल्प और बुरे विकल्प खत्म करने हैं क्योंकि जो भी करें शुभ ही करें।

शंका-श्रद्धा

सत्संग करते-करते जिसकी भावना रोज़ाना बढ़ती जाए, श्रद्धा रोज़ाना बढ़ती जाए, समझ लेना चाहिए कि मुनाफे में है और अगर शंका बढ़ती जाए, तो समझ लेना चाहिए कि नुक्सान में जा रहा है। यह हिसाब रोज़ाना लगा लेना चाहिए, श्रद्धा बढ़ रही है कि शंका बढ़ रही है। साधारण मनुष्यों के भीतर श्रद्धा भी है और शंका भी है। मनुष्य आया है गुरुद्वारे श्रद्धा करके, गुरु की बात सुनने, मगर शंका भी है, हर बात मानी नहीं जा सकती। शंका-श्रद्धा, शंका-श्रद्धा, सारी ज़िन्दगी इसी तरह ही गुज़र जाती है। श्रद्धा की एक कदम आगे, शंका की एक कदम पीछे। कोई व्यक्ति रोज़ाना ही इस तरह करे तो कहाँ पहुँचेगा, कहीं भी नहीं। मैं हाथ जोड़ कर पहले मुआफी माँग लूँ, पचास-पचास साल से जो गुरुद्वारे आ रहे हैं और वृद्ध हो गए हैं, पचास साल पहले जहाँ से चले थे, आज भी वहीं हैं, मजाल है, एक कदम भी आगे गए हों। श्रद्धा पैदा हुई यह सत्संग में बैठा है। शंका पैदा हुई यह कुसंगत में जा बैठा है। गुस्ताखी मुआफ, जो किसी वक्त दान करता है, वही किसी वक्त बेईमानी करता है। जो किसी वक्त दया करता है, वही क्रोधी है। हैरानी है कि बड़े-बड़े दानी, बेईमान देखे गए हैं। श्रद्धा पैदा हुई, गुरु के शब्द गा रहा है, गुरु के शब्द सुन रहा है, मगर शंका पैदा हुई, अश्लील गीत आलाप रहा है। अश्लील गीत सुन रहा है। श्रद्धा पैदा हुई, बाणी पढ़ रहा है, शंका पैदा हुई अश्लील नावल पढ़ रहा है। हैरानी की बात है। जिनके हाथ में गुटके होते हैं सुखमनी साहिब के, उनके हाथों में फिल्मी मैगज़ीन देखते हैं और पूरी ज़िन्दगी इसी तरह ही गुज़र जाती है, शंका और श्रद्धा में। एक कदम आगे, एक कदम पीछे और मनुष्य कहीं भी नहीं पहुँचता और यह श्रद्धा, यह भरोसा ही तो बड़ी मुश्किल बात है।

जा कै रिदै बिस्वासु प्रभ आइआ॥
तत गिआन तिस मनि प्रगटाइआ॥ *(अंग २८५)*

नर–नारी

परमात्मा ने नर को नारी से ज्यादा खूबसूरत बनाया है। आदमी के चेहरे पर दाढ़ी, आदमी का सौन्दर्य है। परमात्मा ने मोर को जितना खूबसूरत बनाया है, मोरनी को नहीं। मुर्गे की जितनी खूबसूरती है, मुर्गी उसके समक्ष फीकी पड़ जाती है। बब्बर शेर, जिसकी गर्दन पर इतने लम्बे-लम्बे बाल हैं, शेरनी उसके समक्ष कुछ भी नहीं लगती। इसी तरह नर चिड़े के समक्ष मादा चिड़िया, नर तोते के समक्ष मादा तोते की सुन्दरता कम है। कायनात के भीतर परमात्मा ने नर को मादा के मुकाबले ज्यादा शृंगारा है। इसीलिए औरतें अपने चेहरे पर तरह-तरह के शृंगार कर के सुन्दर दिखने का यत्न करती हैं, मगर पुरुषों के चेहरे पर दाढ़ी है, इसीलिए पुरुषों को बाहर से किसी शृंगार की आवश्यकता नहीं रहती। विपरीत की कशिश के कारण कई दफा औरतें पुरुषों से आकर्षित होकर पुरुषों वाले कपड़े पहनने लग पड़ती हैं और पुरुषों जैसी दिखने की कोशिश करती हैं और पुरुष औरत से आकर्षित होकर अपनी दाढ़ी मुँडवा कर औरतों जैसे दिखने की कोशिश करते हैं।

जिस पुरुष के चेहरे पर दाढ़ी न आए, उसको खोदा कहते हैं, खोदा व्यक्ति दाढ़ी न आने से शर्मसारी महसूस करता है और अक्सर किसी ऐसी दवा की तलाश में रहता है, जिससे कि दाढ़ी आ जाए। कमाल की बात है कि यदि दाढ़ी न आए तो दवा ढूँढता है, और यदि दाढ़ी आ जाए तो नाई ढूँढता है।

कभी किसी मोर ने नहीं कहा कि मेरे लंबे-लंबे पंख काट कर मुझे मोरनी जैसा बना दो। किसी शेर ने नहीं कहा कि मेरे बाल काट कर मुझे शेरनी जैसा बना दो, मगर एक मनुष्य ही है, जो दाढ़ी कटवा कर नारी जैसा बनता है।

कर्म–I

यह जीव रूपी पक्षी चहुँ दिशाओं में उड़ते हैं। कभी किसी शहर, कभी किसी शहर। कभी किसी मुल्क, कभी किसी मुल्क भटकते रहते हैं, परन्तु साहिब कहते हैं कि जितना उड़ते हैं, जितना भटकते हैं, उतने ही दुखी होते हैं। ऐ मनुष्य, तू चाहे पूरे खण्डों, ब्रह्माण्डों का भ्रमण कर आ, तेरे कर्म तेरे साथ ही जाएँगे। हर जगह तेरे कर्म ही फलीभूत होंगे। हर जगह तेरा प्रयास, तेरा श्रम फलीभूत नहीं होगा। एक साधारण कहावत है कि जो दिल्ली बुराई है, वह हरिद्वार भी बुराई है। भाव जिनका प्रारब्ध दिल्ली अच्छी नहीं थी, उनका प्रारब्ध हरिद्वार भी अच्छा नहीं होगा। अगर कर्म अच्छा नहीं तो फल बुरा मिलेगा। कर्म अच्छा नहीं तो दुख ही मिलेगा। चाहे वह कहीं भी बैठा हो कर्म ने तो अपना फल देना ही है। कई बार मनुष्य सोचता है कि इस शहर में मुझे सुख नहीं मिला, शायद उस शहर में सुख मिल जाए। इस देश में मुझे सुख नहीं मिला, शायद उस देश में सुख मिल जाए, मगर दुख-सुख तो कर्मों के बीज से निकलते हैं। अमेरिका में भी माँगते हुए भिखारी मिलते हैं। अमेरिका में फुटपाथों पर सोए हुए लोग मिलते हैं। खुदकुशी लोग उधर भी करते हैं। दुखों से सताए हुए अपसैट मनुष्य मिलते हैं, दुनिया का सबसे अमीर देश है, मगर वहाँ भी लोग दुखी हैं। मुल्क के बदलने से प्रारब्ध नहीं बदलती, दुख-सुख नहीं बदलते। यह तो कर्मों के अनुसार मिलते हैं, और कहीं भी चले जाएँ, कर्म तो साथ ही जाएँगे। मनुष्य जो कर्म करता है, भारत में भी उसका वही फल मिलता है, और किसी और मुल्क में भी वही फल मिलेगा। शुभ कर्म हैं तो इसका फल इसको अपने देश में भी मिल जाएगा, विदेश में भी मिल जाएगा। हर शहर में मिल जाएगा, हर जगह पर मिल जाएगा। परन्तु अगर कर्म ठीक नहीं तो चोगा चुगने के लिए सारे ब्रह्माण्ड का भ्रमण कर ले, दुख ही मिलेंगे, भटकना ही मिलेगी। ऐ मनुष्य!

शायद कहीं तू सोच ले कि वह मुल्क तुझे सुख देगा, नहीं तेरे कर्म ही तुझे सुख देंगे। अमुक शहर तुझे सुख देगा, कतई नहीं, तेरे किए हुए कर्म तुझे सुख देंगे। कर्म गलत किए हैं, कहीं भी चला जा, दुख ही दुख मिलेगा, निराशा ही हाथ लगेगी। कर्म ठीक हैं तो कहीं भी चला जा, सुख ही सुख मिलेंगे। कामयाबी ही मिलेगी, मूल बात कर्मों की है।

दुख-सुख को एक फल माना गया है। सुख-दुख का बीज कर्म है। हम जो भी कर्म करते हैं, उसको दुख-सुख के फल लगते हैं। एक बार मैं इंगलैंड के एक गुरुद्वारे में कुछ दिनों से कर्म फिलास्फी पर विचार संगतों के सम्मुख रख रहा था। एक दिन सुबह-सुबह कुछ नवयुवक मेरे कमरे में आए। उनके साथ एक कुछ दिनों का विकलांग बच्चा भी था। वह आकर कहने लगे कि तुम्हारी कर्म फिलास्फी गलत है, झूठी है। आप इतने दिनों से अपना और संगतों का समय बर्बाद कर रहे हो। बताओ, यह बच्चे ने क्या गलत कर्म किया है, जो जन्म से ही अपाहिज है, पूरी ज़िन्दगी यह खुद भी दुखी रहेगा और हमें भी दुखी करेगा। वह बहुत गुस्से में बोलते जा रहे थे। दरअसल वह बच्चे के दुख की वजह से आपे से बाहर थे। मैंने उनको शाँत किया और कहा कि मुझे भी कुछ बोलने का अवसर दो। मैंने उनसे कहा कि कर्म एक बीज है और इस बीज को दुख और सुख के फल लगते हैं। कई दफा मनुष्य कह देता है कि मुझे इतना दुख आ गया, मैंने तो कोई बुरा काम नहीं किया, मैंने तो कोई गलत काम नहीं किया, मैंने किसी का बुरा नहीं सोचा, फिर मुझे इतना दुख क्यों आ गया। दरअसल बीज बोने से लेकर फल तक पहुँचने के लिए समय का गैप है, समय का अन्तराल है। धरती में बीज मैंने आज बोया है, फल तो आज कोई नहीं, कुछ वक्त लगेगा, समय लगेगा। कोई बीज बोने के पश्चात् फल छः महीने में देता है, कोई वर्ष के पश्चात्, कोई दो वर्ष, कोई पाँच वर्ष पश्चात्, यहाँ तक कि इमली का पौधा पैंतीस वर्ष के पश्चात् फल देता है। सो फल तक पहुँचने के लिए समय का अंतराल है। हू-ब-हू हम जो कर्म रूपी बीज बोते हैं, उसका फल आज नहीं है। समय का अंतराल होने की वजह से हमें यह याद नहीं होता कि यह बीज कब बोया था, जिसको यह दुख का फल लगा है। भक्त कबीर जी भी कहते हैं:

अपने करम की गति मै किआ जानउ
मै किआ जानउ बाबा रे॥ *(अंग ८७०)*

अगर हम आज दुखी हैं तो यह बात पक्की है कि कोई कर्म पहले ऐसा किया है, जिसकी वजह से आज दुखी हैं, और अगर हम आज सुखी हैं तो पहले कोई कर्म ऐसे किए हैं, जिसको यह सुख के फल लगे हैं। मैंने उनको समझाया कि मनुष्य जीवन में कर्म रोज़ाना करता है, मगर मनुष्य की आयु रोज़ाना कम होती जा रही है। एक दिन मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, मगर जो हम कर्म आखिर समय तक बोते रहे हैं उनका फल हम उस जीवन में नहीं खा सके। वह फिर अगले जन्म में खाने को मिलते हैं। मैंने उनको कहा कि यह जो बच्चा विकलांग ही पैदा हुआ है, यह कोई पिछले जन्म का बोया हुआ बीज है, जो इसकी यह हालत है और कोई आपके भी कर्म ऐसे होंगे, जिस कारण इसके संबंध आपके साथ जुड़े हैं। सो यह एक नियम है कि अगर दुख है तो कर्म बुरे किए हैं, अगर सुख है तो कर्म कुछ अच्छे किए हैं। इसलिए किसी दूसरे को गुरुबाणी अनुसार दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

ददै दोसु न देऊ किसै दोसु करंमा आपणिआ॥
जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना॥
(अंग ४३३)

निर्मल कर्म

साधारणतः कहा जाता है कि निर्मल कर्म करो और परमात्मा का नाम जपो। यों भी कहा जाता है मन को निर्मल करके गुरुद्वारे जाओ। यह भी कहा जाता है कि मन को एकाग्र करके बाणी पढ़ो। यह पूरा ही गलत कहा जाता है, बिल्कुल गलत। यों कहना चाहिए कि गुरुद्वारे जाओ, ताकि मन निर्मल हो। मन को निर्मल करके गुरुद्वारे जाओ। किस तरह निर्मल कर लोगे, गुरुद्वारे के बिना। मन को एकाग्र करके बाणी पढ़ो, गलत। बाणी पढ़ो ताकि मन एकाग्र हो। मन की एकाग्रता तो फल है, यह पहले कैसे मिल जाएगा। मन को शुद्ध करके बाणी पढ़ो, यह कैसे होगा। यों कहना चाहिए कि बाणी पढ़ो ताकि मन शुद्ध हो। नाम जपो ताकि मन शुद्ध हो। शुद्धता तो फल है, एकाग्रता तो फल है।

हरि को नामु जपि निरमल करमु॥ *(अंग २६६)*

यह जपना ही तो निर्मल कर्म है।

आलस्य

मनुष्य आज जो कुछ भी है, इससे कई गुणा अधिक हो सकता था। कई गुणा अधिक महान् हो सकता था और आगे बढ़ सकता था, अगर कहीं यह आलस्य की दीवारों को तोड़ देता। जिनको हम बड़ा फुर्तीला और काम करने वाला कहते हैं, उनकी ज़िन्दगी में भी 50-60 प्रतिशत आलस्य होता है, बाकी में तो इससे भी अधिक आलस्य होता है और आलस्य अवगुणों में से एक बहुत बड़ा अवगुण है। धार्मिक मार्ग का समूचा विकास यह आलस्य रोक देता है। समय भी है, कौन नाम नहीं जपने दे रहा ? आलस्य। कौन बाणी नहीं पढ़ने दे रहा ? यह आलस्य। धार्मिक मार्ग पर यह आलस्य बहुत बड़ी दीवार है। ठीक है धन कमाने के लिए मनुष्य ने आलस्य की बहुत सारी दीवारें तोड़ दी हैं, संसार में आगे होने के लिए मनुष्य ने बेशुमार दीवारें तोड़ी हैं, मगर धार्मिक मार्ग में तो मनुष्य रोज़ाना नई से नई आलस्य की दीवारें खड़ी करता जा रहा है। नए से नए बहाने यह आलस्य ढूँढ लेता है और यही कारण है कि समूचा संसार धार्मिक तल पर पिछड़ गया है। पिछड़ने का कारण एक और भी है कि मनुष्य भीड़ से प्रभावित है। धर्म के मार्ग पर भीड़ नहीं है। धन कमाने के मार्ग पर बहुत भीड़ है। प्रभुता कमाने के मार्ग पर बहुत भीड़ है और मनुष्य उधर ही दौड़ना चाहता है, जिधर समूचा संसार दौड़ रहा है मगर धर्म के मार्ग पर कोई विरला मनुष्य ही चलता है। इसलिए आम मनुष्य धन कमाने के लिए, प्रभुता के लिए, संसार के लिए तो किसी हद तक आलस्य छोड़ ही देते हैं, मगर निरंकार के लिए, प्रभु का नाम जपने के लिए, अमृत वेले (ब्रह्ममुहूर्त) जागने का आलस्य नहीं छोड़ते। धन कमाने के लिए आधी-आधी रात तक जाग कर और फिर सुबह-सुबह शीघ्र उठ कर भाग-दौड़ कर सकते हैं। धन के लिए आलस्य को त्यागते हैं, मगर धर्म कमाने के लिए आलस्य नहीं त्यागते और धार्मिक तल पर पिछड़ जाते हैं।

पाप-अपराध

संसार में इतने धार्मिक मंदिर हैं, जिनको कहें कि पुण्य कमाने के स्थान हैं। भारत में बहुत बड़े-बड़े 68 तीर्थ हैं। हर शहर में अनेकों मंदिर, मस्जिदें, चर्च, मठ और गुरुद्वारे हैं। संसार का कोई भी कस्बा मंदिर से खाली नहीं है। कोई न कोई धार्मिक स्थान है। मगर यह भी सच है कि संसार का कोई भी कस्बा और कस्बे में रहने वाले लोग पाप से खाली नहीं हैं। धार्मिक मंदिर मौजूद हैं, मगर पाप भी मौजूद हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार की साधना मौजूद है, मगर पाप भी मौजूद हैं। पूजा-पाठ मौजूद है, मगर बड़े भयंकर पाप भी मौजूद हैं। कथा-कीर्तन, जप मौजूद हैं, मगर पाप भी मौजूद हैं।

पाप के दो रूप हैं—पाप और अपराध। यह मूल रूप में पहले विचार में आता है, फिर किरदार में आता है। जब यह विचार में, नीयत में आता है तो पाप कहलाता है और जब कृत में आता है तो अपराध कहलाता है। मन से बुरा सोचना पाप है, तन से बुरा करना अपराध है। पाप दुख को जन्म देता है और दुखी सारा संसार है। गुरु नानक देव जी कहते हैं:

नानक दुखीआ सभु संसारु ॥ *(अंग ९५४)*

और अगर सारा संसार दुखी है तो इसका मतलब सारा संसार पापी है। दरअसल पाप करने की छूट है, अपराध करने की छूट नहीं। मन से हर व्यक्ति बुरा सोचता है। कभी काम-वश होकर, कभी क्रोध-वश होकर, कभी अहंकार-वश होकर और कभी ईर्ष्या-वश होकर यह बुरा सोचता है और मन में बुरा सोचना कानून की और समाज की पकड़ में नहीं आता। पाप को सिर्फ पाप करने वाला जानता है या फिर परमात्मा जानता है। पाप दुख का बीज है क्योंकि हर मनुष्य पापी है और हर मनुष्य दुखी है। अपराध का बीज पाप है क्योंकि जो अपराध करता है, वह पहले मन में बुरा सोचता है और जब बार-बार सोचेगा, काम-

वश होकर तो एक दिन अपराध कर बैठेगा, बलात्कार कर देगा। बार-बार बुरा सोचेगा लोभ-वश होकर तो यह सीमा से बढ़ा हुआ लोभ बेईमानी, चोरी करने पर मजबूर कर देगा। यह आवश्यकता से अधिक अहंकार इससे अपराध करवा देगा और कानून और समाज की पकड़ में आ जाएगा। परन्तु यदि यह अपराध नहीं कर रहा तो यह मत समझना कि यह पापी भी नहीं। यह समाज और कानून का डर मानता है, इस भय की वजह से यह खुद को अपराध करने से रोक रहा है। यह परमात्मा का भय नहीं मानता। इस वजह से यह पाप किए जा रहा है और पाप करना यानि बुरा सोचना कानून की नज़र में नहीं, समाज की नज़र में नहीं। कानून व समाज देखता है कि इसने किया क्या है, परमात्मा देखता है कि इसने सोचा क्या है, कानून और समाज देखता है कि इसका किरदार क्या है, मगर परमात्मा देखता है कि इसका विचार क्या है। इस तरह अपराधी तो कानून और समाज के भय की वजह से बहुत कम हैं, मगर पापियों से तो समूचा संसार भरा पड़ा है। अगर समूचे संसार की आबादी के हिसाब से सारी जेलों के अपराधियों की गणना करें तो शायद एक हज़ार के पीछे एक-आध अपराधी हो। मगर यदि पापियों की गणना करें तो गुस्ताखी मुआफ, एक हज़ार में से 999 तो पापी होंगे ही। और (पापी का) बुरा सोचते ही मन मैला हो जाता है और गुरु साहिब कहते हैं :

मनि मैलै सभु किछु मैला तनि धोतै मनु हछा न होइ॥

(अंग ५५८)

ऐसे व्यक्ति का दान, पूजा, पाठ सब कुछ मैला हो जाता है। इसलिए मनुष्य को मन में किसी के लिए भी किसी तरह का बुरा नहीं सोचना चाहिए। अपराध तो क्या, पाप भी नहीं करना चाहिए और अपने जीवन में से यदि पाप को मिटाना है तो यह संतुष्टि से मिटेगा। जो है, जैसा है, ठीक है, यह प्रभु की नियति थी। ऐसा होना था। बस इसको कबूल करते, परवान करते पुण्य का जन्म होता है, धर्म उत्पन्न होता है और परमात्मा का प्रकाश होता है। इसके विपरीत असंतुष्टि से महा अंधकार का जन्म होता है और घोर दुख पैदा होते हैं। इसको लिखित रूप दें तो एक ही पाप है असंतुष्टि, एक ही पुण्य है संतुष्टि। धार्मिक विद्वान कहते हैं कि दुख पाप से पैदा होता है। अगर दुख पाप से पैदा होता है तो पाप असंतुष्टि से जन्म लेता है। इस तरह असंतुष्टि ही पाप है और असंतुष्टि ही दुख

है। कोई अपने बच्चों से संतुष्ट नहीं है, कोई अपने माता-पिता से संतुष्ट नहीं है। कोई अपने बहनों-भाईयों से संतुष्ट नहीं है, कोई अपनी पत्नी से संतुष्ट नहीं है, कोई पत्नी अपने पति से संतुष्ट नहीं है। यह पारिवारिक असंतुष्टि कहलाती है। जगत् में ऐसा मनुष्य ढूँढना कठिन है, जो अपने परिवार के सभी सदस्यों से संतुष्ट हो। पारिवारिक असंतुष्टि किसी न किसी रूप में परिवारों में मौजूद है। एक है आर्थिक असंतुष्टि। जितना मनुष्य के पास धन है, इससे यह संतुष्ट नहीं है। जितना धन इसको प्राप्त हो रहा है, यह इससे संतुष्ट नहीं है। मनुष्य की आवश्यकताएँ तो बहुत कम हैं, मगर मनुष्य के पास असंतुष्टि बहुत ज्यादा है। असंतुष्टि की वजह से माल-असबाब को अपने घर में भरता जा रहा है और शायद यह कभी उनको इस्तेमाल भी न कर सके। कोई अपनी शक्ति से संतुष्ट नहीं, उससे भी शक्तिशाली होने की अभिलाषा करता है। अगर व्यापक तल पर नज़र डालें तो मनुष्य को मनुष्य से खतरा है और यह सब असंतुष्टि की वजह से है। समस्त संसार में जान, माल, इज़्ज़त, आबरू को खतरा है। इज़्ज़त को आज भी खतरा मौजूद है। कोई भी देश, कोई भी शहर, कोई भी कस्बा ऐसा नहीं है, जो इन खतरों से खाली हो। यह खतरा, यह भय व्यापक है, क्योंकि असंतुष्टि व्यापक है। हर मनुष्य असंतुष्ट है और जब कमज़ोर मनुष्य असंतुष्ट होता है तो उसकी असंतुष्टि की वजह से छोटे पाप, छोटे अपराध जन्म लेते हैं। मगर जब कोई शक्तिशाली मनुष्य असंतुष्ट होता है तो उससे व्यापक बर्बादियाँ जन्म लेती हैं, बहुत बड़े अपराध और तबाहियाँ जन्म लेती हैं। दुनिया में बहुत बड़ी-बड़ी तबाहियाँ शक्तिशाली मनुष्यों से हुई हैं। हिटलर ने अढ़ाई करोड़ मनुष्यों का कत्ल किया। हलाकू बस्तियाँ उजाड़कर गुज़रता था। चीन के माउज़े तुंग ने तीन करोड़ मनुष्यों का कत्ल किया और तीन करोड़ व्यक्तियों को उजाड़ दिया। स्टालिन, लैनिन पता नहीं कितनों के कातिल हैं। यह बात भिन्न है कि छोटे कातिल, कातिल होते हैं। मगर बड़े कातिल बादशाह होते हैं। छोटे चोर, चोर होते हैं। किसी एक की जेब काट लें, शायद पकड़े जाएँ, जेल की हवा खाएँ मगर जो पूरे देश को लूट लें, वह लुटेरे नहीं कहलाते, वह बादशाह कहलाते हैं। शक्तिशाली मनुष्यों के पास शक्ति का इतना बड़ा पर्दा है कि वह अपने दुराचार को, हिंसक हुई वृत्तियों को ढाँप लेते हैं। उनकी इतनी ज्यादा शक्ति होती है कि मनुष्य की निगाहें उनकी शक्ति पर ही जाती हैं। शक्ति के नीचे किए अपराध उनको नज़र आते हैं और लोग उनको बादशाह सलामत,

महाराजा साहिब, नवाब साहिब कहते हैं। चूंकि कमज़ोर मनुष्य के लिए हथकड़ियाँ है, बेड़ियाँ हैं, जेलें हैं, इसीलिए कमज़ोर मनुष्य पाप को अपराध की रूपरेखा तो नहीं दे सकता, मगर वह पापी तो है। चाहे वह अपराधी नहीं है, मगर पापी तो वह है। क्योंकि उसके विचारों में दूसरों का धन है, उसके विचारों में दूसरों का रूप है, उसके विचारों में दूसरों की शक्ति भी होगी और इसको मौका मिले किसी को पछाड़ने का तो वह अहिंसा पर भी उतर सकता है, दुराचार भी कर सकता है। जिस दिन कमज़ोर मनुष्य को शक्ति मिल गई, इसका तन दुराचारी हो जाएगा। हम देखते हैं कि जो मनुष्य कभी कमज़ोर थे और देवतों की तरह लगते थे, शरीफ और भलेमानस लगते थे, शक्ति के मिलते ही भ्रष्ट हो गए। अपने ही देश भारत को देखिए। महात्मा गाँधी ने सफेद कपड़े, सफेद टोपियाँ पहना कर सेवक पैदा किए, स्वतंत्रता सेनानी पैदा किए। बड़े प्यारे लगते थे पर शक्ति के मिलते ही भ्रष्ट हो गए। नज़रें तो पहले ही चोर होंगी, शक्ति ने हाथ भी चोर बना दिए। नज़रें तो पहले ही दुराचारी होंगी, शक्ति के मिलते ही दुराचारी बन गए। मगर कमज़ोर असंतुष्ट मनुष्य, जिनके पास शक्ति नहीं है, वह पाप तो करते ही हैं, उनकी नज़रें तो चोर हैं, नज़रें तो दुराचारी हैं, उनके हाथ चोर नहीं होते, पैर गलत दिशा नहीं जाते तन तो मलिन नहीं होता, मगर उनकी नज़रें तो मलिन होती हैं और नज़रों को हथकड़ियाँ नहीं लगाई जा सकतीं। बुरी और मलिन नज़रों पर कानून और समाज भी बँधन नहीं डाल सकते, क्योंकि कानून और समाज तो बुरी और मलिन नज़रों के समक्ष कमज़ोर हैं। शक्तिशाली मनुष्य के हाथों में इतनी शक्ति है कि हथकड़ियाँ उसके आगे कमज़ोर हैं। शक्तिशाली के हाथ चोर हैं, कमज़ोर की नज़रें चोर हैं। शक्तिशाली का जिस्म दुराचारी है, कमज़ोर की नज़रें दुराचारी हैं।

सो पाप से अगर बचना है, दुख से अगर बचना है तो प्रभु का चिंतन करो और अरदास करो कि संतोष (संतुष्टि) मिले। जैसा रूप है, जैसा कुटुंब है, जैसा आर्थिक लाभ है, जो कुछ है, कबूल है, संतुष्ट है। सफलता मिल गई संतुष्ट, नहीं मिली तब भी संतुष्ट। ऐसा मनुष्य हर समय आनंदित रहता है। पाप-अपराध से बच जाता है।

भूतकाल, भविष्य और वर्तमान

मनुष्य या भूतकाल में जीता है या भविष्य में जीता है। भूतकाल की यादें हैं और भविष्य की चिंता है। यादें दुख अथवा सुख की हैं। जो मिला था, यह मिलन की याद सुख है, मगर जब कुछ बिछुड़ गया, यह बिछुड़ने की याद दुख है। मित्र मिला था, मनुष्य उसे याद करके सुख की यादों में खो जाता है, मगर बिछुड़ने की याद की वजह से दुख में जीता है। इसी तरह जवानी की यादों में सुख, तंदरुस्ती की यादों में सुख, प्रभुता मिली थी या कोई अन्य पदार्थ मिला था, मनुष्य उसको याद करके सुख में जीता है, मगर इन सभी वस्तुयों के बिछुड़ने पर जो दुख हुआ था, उसे याद करके रोता है। संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो मिल कर बिछुड़े न। जीवन भर मिलना बिछुड़ना चलता रहता है, परन्तु अगर परमात्मा मिल जाए तो वहाँ विछोड़ा नहीं है। जब मनुष्य खुशी की यादों में बैठा है, उस समय चेहरे के हाव-भाव कुछ और होंगे, जब मनुष्य दुख की यादों में बैठा है उस समय चेहरे के हाव-भाव कुछ और होंगे। चेहरा और आँखें कभी झूठ नहीं बोलतीं। कई बार मनुष्य ज़बान से हाँ कह रहा होता है, मगर चेहरा इन्कार कर रहा होता है। कई बार किसी के मिलन पर मनुष्य कहता है तुम्हें मिल कर बड़ी खुशी हुई, मगर नजरें बताती हैं, चेहरा बताता है, कम्बख्त कहाँ मिल गया है, काम पर जा रहे थे, लेट करवाएगा। समय खराब करेगा।

यदि मनुष्य भूतकाल में किसी समय नहीं है तो फिर भविष्य में जी रहा होगा। भविष्य में चिन्ता है। चिन्ता को अगर गहराई से देखें तो इसके मूल दो कारण हैं। एक तो यह कि जो दूसरों से बुरा हुआ है कम से कम मुझ से न हो और दूसरा जो मैं चाहता हूँ, शायद न हो। यह दो तरह की चिन्ता में मनुष्य जीता है। ऐसा नहीं होना चाहिए, कम से कम मुझ से तो ऐसा नहीं होना चाहिए। मगर भीतर चिन्ता

बनी हुई है कि मुझ से हो न जाए। जगत् बूढ़ा हो जाता है, मैं बूढ़ा न हो जाऊँ। मगर भीतर चिन्ता बनी हुई है कि कहीं मैं बूढ़ा न हो जाऊँ। जगत् रोगी है तो हो, मैं तंदरुस्त रहूँ परन्तु चिन्ता बनी हुई है कि कहीं मैं रोगी न हो जाऊँ। जगत् मरता है, तो मर जाए, कहीं मेरी अर्थी न निकल जाए, मगर भीतर चिन्ता है कि कहीं मेरी भी अर्थी न निकले। भक्त कबीर जी कहते हैं:

पारोसी के जो हूआ तू अपने भी जानु॥

(अंग १३७३)

पड़ोसी की अर्थी उठी है, तेरी भी उठेगी। पड़ोसी बूढ़ा हो गया है, तू भी बूढ़ा होगा। मगर भीतर चिन्ता बनी हुई है कि कहीं ऐसा न हो जाए। दूसरी चिन्ता, ऐसा होना चाहिए, मेरी यह चाहत है, मेरी ऐसी उमंग है। मेरी ऐसी इच्छा है कि ऐसा होना चाहिए, मगर भीतर चिन्ता है, कहीं ऐसा न हो। चिन्ता के यह दो कारण हैं। मैं चाहता हूँ, ऐसा नहीं होना चाहिए। मैं चाहता हूँ, ऐसा ही होना चाहिए। पहले इस बात की चिन्ता कि कहीं हो न जाए, जो मैं नहीं चाहता, दूसरी इस बात की चिन्ता, जो मैं चाहता हूँ, ऐसा न हो कि कहीं न हो। गुरु साहिब कहते हैं:

(अंग ५१७)

चिंता छडि अचिंतु रहु

संसार में जो कुछ हो रहा है, प्रभु से हो रहा है, मुझ से नहीं हो रहा। मुझे तो सिर्फ उस होनी से सहमत होना है। जो होनी से सहमत हो गया, वह परमात्मा से सहमत हो गया। जो परमात्मा से सहमत हो गया, समझो परमात्मा से जुड़ गया।

मनुष्य जहाँ भी बैठा है, परिवार में बैठा है, कारोबार में बैठा है। धार्मिक स्थान पर बैठा है या वह बिल्कुल खाली बैठा है। वह या तो भूतकाल की यादों में बैठा है, या फिर भविष्य की चिन्ताओं में बैठा है। यह दो बोझ इसके दिमाग पर हर वक्त चलते रहते हैं।

तन को भागने-दौड़ने के लिए स्थान चाहिए। मन को भागने-दौड़ने के लिए समय चाहिए। जगह ही खुली न हो तो तन भाग-दौड़ नहीं सकता। जगह में भाग-दौड़ होती है तन की। मगर समय में भागता है मन। मन समय में भटकता है, गुज़रे हुए समय की यादों में, आने वाले समय की चिन्ताओं में भटकता है। इसको दोनों समय (कालों)

में से निकालना है और तीसरा काल है—वर्तमान। वर्तमान एक दम है। वर्तमान आज का दिन नहीं है, वर्तमान आज की रात नहीं है। वर्तमान एक दम है। जो मेरे मुख में है, सभी के मुख में है। जो दम अभी आया ही नहीं, वह तो मेरा भविष्य है, वह मेरे पास नहीं है। जो दम मेरे मुख से चला गया, वह तो मेरा भूतकाल है, वह खर्च हो गया। जो दम चला गया, उसको मैं खर्च नहीं कर सकता। जो दम अभी आया नहीं, मैं उसको भी इस्तेमाल नहीं कर सकता। जिसको मैं इस्तेमाल कर सकता हूँ, वह है वर्तमान। और वर्तमान है सिर्फ एक दम। गुरु नानक देव जी कहते हैं:

हम आदमी हां इक दमी मुहलति मुहतु न जाणा॥

(अंग ६६०)

इसको भाई नन्द लाल जी इस तरह बयान करते हैं:

यक दम ब-खेश राह न बुरदम किः कीसतम।
ऐ वाए नकदि जिंदगीम, राइगां गुजशत।

हे प्रभु! एक दम तूने मुझे दिया था, मगर मैंने इस एक दम को गुज़ारा, गुज़रे हुए दमों की याद में। मैंने एक दम को गुज़ारा, आने वाले दमों की चिन्ता में। दम-दम करके मेरी पूरी ज़िन्दगी चली गई। सारी ज़िन्दगी व्यर्थ गँवा दी। तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि एक दम में क्या कर सकते हैं। एक दम के भीतर कोई लंबी यात्रा नहीं हो सकती। एक दम के भीतर लंबा चौड़ा कारोबार नहीं खोला जा सकता। एक दम के भीतर कोई ऊँचा बड़ा महल नहीं खड़ा किया जा सकता। एक दम के भीतर कोई लंबी चौड़ी विद्या हासिल नहीं की जा सकती। मगर एक दम में परमात्मा प्राप्त किया जा सकता है। प्रभु जब भी मिलेगा एक दम में मिलेगा। सभी महा-मंत्र एक दम में पूरे हो जाते हैं। 'राम' एक दम के भीतर पूरा हो गया। ओम एक दम के भीतर पूरा हो गया। 'अल्लाह' एक दम के भीतर पूरा हो गया। 'वाहिगुरु' एक दम में पूरा हो गया। 'वाहिगुरु' एक ही दम में। मेरा पूरा ध्यान इसी मंत्र के सुनने में आ जाए—'वाहिगुरु' और मैं जैसे एक दम में आऊँगा, सारे का सारा ध्यान इसी मंत्र के सुनने में आ जाए—'वाहिगुरु' और जैसे मैं एक दम में आऊँगा, सारे के सारे ध्यान को लगाऊँगा। इसको ध्यान साधना कहते हैं। सो भूतकाल खो जाएगा, भविष्य खो

जाएगा और वर्तमान ने भगवान को प्रगट कर देना है। श्री कबीर जी कहते हैं:

बेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकरु न जाइ॥
टुकु दमु करारी जउ करहु हाजिर हजूरि खुदाइ॥

(अंग ७२७)

एक दम में टिक जाओ। खुदा हाज़र-नाज़र है, परमात्मा हाज़र-नाज़र है। धर्म की सारी साधना, इसी तरीके से वर्तमान में आई है। बड़े-बड़े दार्शनिक वर्तमान में नहीं जीते। बड़े-बड़े ज्ञानी मनुष्य वर्तमान में नहीं आते। भविष्य की चिन्ताओं में जीते हैं, भूतकाल की यादों में बैठे हैं। अगर मनुष्य एक दफा वर्तमान में आ जाए तो उसी वक्त प्रभु की प्राप्ति, प्रभु का मिलाप हासिल कर सकता है। एक दम से प्राप्ति हो जाती है। गुरु गोबिंद सिंघ जी अकाल उसतति में फुरमाते हैं:

एक चित जिह इक छिन ध्याइओ॥
काल फास के बीच न आइओ॥

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

निरबाण कीरतनु गावहु करते का
निमख सिमरत जितु छूटै॥ *(अंग ७४७)*

निमख का मतलब, एक दम। बाबा फरीद जी इसको अपनी वाणी में इस तरह बयान करते हैं:

आजु मिलावा सेख फरीद
टाकिम कूंजड़ीआ मनहु मचिंदड़ीआ॥ *(अंग ४८८)*

'आजु मिलावा' से मुराद आज का सारा दिन, कतई नहीं। आज से मुराद वर्तमान। वर्तमान से मुराद एक दम।

मन पहले-पहल वर्तमान में नहीं आएगा, एक दम में नहीं आएगा। ज़बान वाहिगुरु उच्चारण करे और मन पूरी एकाग्रता से सुने, बहुत कठिन है।

आखणि अउखा साचा नाउ॥

अमृत वेले पहले 'वाहिगुरु-वाहिगुरु' का 10-15 मिनट उच्चारण करना, फिर गुरु कितना ही करा देता है। रसना गायन करे, 'वाहिगुरु

वाहिगुरु' और कान सुने और मन में भावना भी हो तो गुरु साहिब कहते हैं :

गावीऐ सुणीऐ मन रखीऐ भाउ॥
दुखु परहरि सुखु घर लै जाइ॥

इस तरह 'वाहिगुरु' एक बार ही कहने से सभी दुख, सभी पाप मिट जाएँगे। करोड़ दफा 'वाहिगुरु' कहने से एक दुख, एक पाप भी नहीं मिटेगा। मगर जैसे गुरु साहिब कहते हैं ऐसे एक दफा कहने से करोड़ों दुख, पाप मिट जाएँगे। करोड़ दफा 'वाहिगुरु वाहिगुरु' कहना बड़ा सरल है। मगर एक दफा 'वाहिगुरु' कहना बड़ा कठिन है। करोड़ दफा 'वाहिगुरु' इसलिए कहना है कि कहीं एक दफा कहने का ढंग आ जाए। परमात्मा को प्राप्त करना सरल से सरल भी है और कठिन से कठिन भी है। एक दफा कहने से वह मिलता है। दुर्भाग्य यह है कि एक दम में लाकर 'वाहिगुरु' कहना बहुत कठिन है। कबीर ने गुस्सा किया था अपनी पत्नी पर कि सुना है तूने तीन दफा राम कहलवा कर रोगी का रोग दूर किया है। यह राम के नाम की तौहीन है। लोई कहती, नहीं सन्त जी, आपने गलत सुना है। मैंने रोगी का रोग एक दफा 'राम' कहलवा कर ही दूर किया है। कबीर जी कहते, रोगी खुद कह रहा है, तीन दफा कहलवाया है। लोई कहने लगी, सन्त जी, कहा तो तीन दफा था। मगर वह ठीक एक दफा से ही हुआ है। पहली दफा जब राम कहा, मन उस समय गुज़रे हुए समय की यादों में था। दूसरी दफा मन भविष्य की चिन्ता में था, मन 'राम' में नहीं था, तीसरी दफा जब मन वर्तमान में आया तो उस उच्चारण से रोगी ठीक हो गया। कहा तीन दफा था, मगर ठीक एक दफा से ही हुआ है तो एक दफा 'वाहिगुरु' कहने से सारे दुख, सारे पाप मिट जाते हैं। प्रभु की प्राप्ति हो जाती है, वर्तमान में टिकते ही मनुष्य परवान हो जाता है। भाई गुरदास जी कहते हैं :

'वरतमान विच वरतदा होवनहार सोई परवाना॥'

होनी-अनहोनी

जगत् में सब कुछ हो रहा है, किया नहीं जा रहा। होनी है जगत् में, अनहोनी कुछ भी नहीं है। रोना किस बात का है कि मेरे साथ अनहोनी हो गई है, जबकि गुरुबाणी कहती है, नहीं यह होनी हुई है, अनहोनी नहीं हुई। रोना तब होगा कि जो मैंने चाहा था, वह नहीं हुआ और जो मैं नहीं चाहता था, वह हो गया। उसको हम अनहोनी कहते हैं। गुरु तेग बहादुर साहिब जी का यह पावन श्लोक :

चिंता ता की कीजीऐ जो अनहोनी होइ॥
इहु मारगु संसार को नानक थिरु नही कोइ॥

(अंग १४२९)

गुरु साहिब कह रहे हैं कि जो होता है, वह होता है। जो नहीं होता, वह नहीं होता। फिर चिन्ता किसकी? चिन्ता तब करो अगर अनहोनी होती हो। अनहोनी तो होती ही नहीं। जगत् जो इतना रो रहा है, उसका कारण है कि जो हो रहा है, वह कबूल नहीं और जो मैं चाहता हूँ उसी तरह हो, मगर नहीं। प्रभु की रज़ा में यह दरिया बह रहे हैं। प्रभु के हुक्म में यह सूर्य, चाँद, तारे गर्दिश में हैं। समूचा ब्रह्माण्ड जो है, प्रभु की रज़ा में चल रहा है। ऐ मनुष्य! तू गहराई से देख, है तो तू भी उसी के हुक्म में। गुरु नानक देव जी का महान् वाक :

हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ॥
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ॥

(अंग १)

अगर कहीं मनुष्य उस परमात्मा की मर्यादा और तरतीब को समझ जाए तो इसका अहंकार आज ही मिट जाए। जिसने भी उसके हुक्म को जान लिया है, होनी से सहमत हो गया, समझो प्रभु से सहमत हो गया और जो होनी को सिजदा करता है, वह परमात्मा को सिजदा

करता है। जिसको होनी कबूल नहीं, उसको परमात्मा कबूल नहीं। लाख पूजा-पाठ करे, इबादत करे, रोज़े रखे, व्रत रखे, तीर्थ यात्रा का रटन करे, अनंत दान दे, रोज़ाना सत्संग करे, जप-तप करे, अगर मनुष्य होनी से सहमत नहीं तो अभी परमात्मा से कोसों दूर है। होनी को तो कोई विरला ही कबूल कर सकता है। क्यों ? क्योंकि ईश्वरेच्छा, मेरी इच्छा से, मेरी चाहत से मेल नहीं खाती, अक्सर मेल नहीं खाती। मनुष्य का यत्न है कि ईश्वर मेरी चाहत से चले। इस मनुष्य को कौन बताए कि जगत् मेरी चाहत से नहीं चल रहा। जगत् तो प्रभु की चाहत से चल रहा है। मेरी चाहत हार खा जाती है और होता है प्रभु का चाहा हुआ और फिर रोना निकल जाता है।

नर चाहत कछु अउर अउरै की अउरै भई॥

(अंग १४२८)

मैं सोचता हूँ कि यह करूँ, होता कुछ और है। जीवन की इन रोज़मर्रा की घटनाओं से भक्त कबीर जी कहते हैं, मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि वही होता है जो ईश्वर को भाता है, वह नहीं होता जो मुझे भाता है। आप फुरमान करते हैं:

कबीर जो मै चितवउ ना करै किआ मेरे चितवे होइ॥
अपना चितविआ हरि करै जो मेरे चिति न होइ॥

(अंग १३७६)

इसको बाबा फरीद जी अपने तरीके से यूँ बयान करते हैं:

फरीदा दरिआवै कंन्है बगुला बैठा केल करे॥
केल करेदे हंझ नो अचिंते बाज पए॥
बाज पए तिसु रब दे केलां विसरीआं॥
जो मनि चिति न चेते सनि सो गाली रब कीआं॥

(अंग १३८३)

जो कभी सोचा भी नहीं था, स्मृति में नहीं था, वही हो गया, वही घटित हो गया। ऐसा हरेक का अनुभव है। ऐसे अनुभव जीवन में सम्मुख आते हैं। पातशाह फुरमाते हैं:

मता करै पछम कै ताई पूरब ही लै जात॥

(अंग ४९६)

सोचा था पश्चिम की तरफ जाना है, तैयारी भी कर ली, पश्चिम की तरफ जाने का यत्न भी कर लिया। अभी कदम बढ़ाना ही था कि पूर्व की तरफ जाना पड़ गया। रूए-ज़मीन पर ऐसा अनुभव हर मनुष्य को ज़रूर हुआ होगा। करना मैं क्या चाहता था, हो क्या गया। प्राप्त मैं क्या करना चाहता था, मिला क्या। जाना मैंने कहाँ था, मगर मुझे जाना किधर पड़ गया। कोई मनुष्य ऐसा नहीं है, जिसको यह अनुभव न हुआ हो। इस तरह सब कुछ उस अकाल पुरुष के हाथ में है। मेरी चाहत से कुछ नहीं होना। मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है:

भाई मत कोई जाणहु किसी कै किछु हाथि है
सभ करे कराइआ॥
जरा मरा तापु सिरति सापु सभु हरि कै वसि है
कोई लागि न सकै बिनु हरि का लाइआ॥

(अंग १६८)

मगर मनुष्य होनी को कबूल नही करता। जवानी इसको कबूल है, बुढ़ापा कबूल नहीं। चलो रो-पीट कर बुढ़ापा भी इसने कबूल कर लिया, अब मौत कबूल नहीं। लाभ कबूल है, नुक्सान कबूल नहीं। इज़्ज़त कबूल है, बेइज़्ज़ती कबूल नहीं। खुशियाँ कबूल हैं, मगर गमियाँ कबूल नहीं। ज़िन्दगी में बड़ी छोटी-बड़ी घटनाएँ हो जाती हैं, अक्सर मनुष्य कह देता है कि काश! ऐसा न होता। मगर तेरे चाहने से क्या होता है। जो होना है, वह तो होना ही है। अगर तुम हँस कर कबूल कर लो तो ठीक है, अन्यथा रो कर, कबूल तो करना ही पड़ेगा। जो हो रहा है ऐसे ही होना था। मेरे किए कुछ नहीं होना। जो होना है वही होना है। मेरी कोई चतुराई काम नहीं करनी।

सिआनप काहू कामि न आत॥
जो अनरूपिओ ठाकुरि मेरै होइ रही उह बात॥

(अंग ४९६)

बहुत बड़ी-बड़ी घटनाएँ को लें, हो रही हैं। उनके अधीन छोटी घटनाओं को लें, वह भी हो रही हैं। मेरे लाख यत्न करने के बावजूद भी दिन ने रुकना नहीं और मेरे लाख रुख्सत करने के बावजूद भी समय से पहले रात ने रुख्सत नहीं होना। दिन हुआ है, होना ही था। सुख मिला

है, मिलना ही था। दुख मिला है, मिलना ही था। मुनाफा हुआ है, होना ही था। नुक्सान हुआ है, होना ही था।

जो होआ होवत सो जानै॥ प्रभ अपने का हुकमु पछानै॥

(अंग २८६)

जैसे हम कहते हैं कि यह बच्चा है, यह बच्चा युवा हो रहा है। यह युवा बूढ़ा हो रहा है। बूढ़ा मर रहा है। बच्चे का युवा होना एक हुक्म है, होनी है। युवा का बूढ़ा होना एक हुक्म है, होनी है। मृत्यु की आगोश में चले जाना, एक होनी है, एक हुक्म है। मृत्यु बच्चे, युवा, वृद्ध किसी को भी अपनी आगोश में ले सकती है। जो हुक्म हमारे तन पर लागू है, वह हुक्म हमारे मन पर भी लागू है। धर्म की साधना है कि मनुष्य अपना मन प्रभु के अनुकूल करे, पर अपने स्वभाव के कारण प्रतिकूल चलता है। होनी को, रज़ा को कोई विरला ही मानता है। साहिब कहते हैं:

भाणे विचि को विरला आइआ॥ (अंग १०६३)

मनुष्य रज़ा को, होनी को नहीं मानता और कह देता है कि मेरे साथ अनहोनी हो गई। नुक्सान हो गया है। दीवालिया हो गया है। अक्सर मनुष्य कह देता है कि मेरे साथ अनहोनी हो गई है। अच्छा खासा स्वस्थ मनुष्य जब बीमार हो जाता है और बीमारी जब चरम सीमा पर पहुँच जाती है तो कह देता है कि मेरे साथ अनहोनी हो गई। कोई युवा जब बूढ़ा हो जाता है तो अनहोनी हो गई है। किसी की मृत्यु हो गई, अक्सर मनुष्य कह देता है कि अनहोनी हो गई है। नहीं, यह अनहोनी नहीं, यह तो होनी है। अगर एक बूढ़ा मनुष्य कहे कि मैं फिर से युवा हो जाऊँ, मासूम बच्चे की तरह हो जाऊँ, यह नहीं होता और एक युवा कहे कि मैं कभी बूढ़ा ही न होऊँ, यह नहीं होता। मैं कभी न मरूँ, यह नहीं होता। मुझे हमेशा मुनाफा ही होता रहे, सभी हमेशा मेरी इज्ज़त करते रहे, मैं हमेशा ही स्वस्थ रहूँ, मैं हमेशा ही सुखी रहूँ, हमेशा ही दिन रहे, यह किस तरह हो सकता है। यह नहीं होता। दिन और रात इकट्ठे ही चलते हैं। यह होनी है, अनहोनी नहीं है। जगत् में अनहोनी कुछ भी नहीं है। मगर बड़ी महीन बुद्धि चाहिए, बड़ी सूक्ष्म सोच चाहिए। इन घटनाओं को समझने के लिए। इसलिए सतिगुरु जी हमें अरदास करने का तरीका बताते हैं:

हारि परिओ सुआमी कै दुआरै दीजै बुधि बिबेका॥

(अंग ६४१)

हे प्रभु! वह विवेकशील बुद्धि दो, जो यह समझ सके कि जो कुछ हो रहा है, वह होनी है, अनहोनी नहीं। दिन हो रहा है, रात हो रही है, जन्म हो रहा है, मृत्यु हो रही है, उत्पत्ति हो रही है, प्रलय हो रही है, पूर्णिमा की रात आ रही है, अमावस की रात हो गई है। यह सब हो रहा है, होनी है। जिस दिन मनुष्य होनी को कबूल कर लेता है, उस दिन फिर सब कबूल। जन्म कबूल, जवानी कबूल, बुढ़ापा कबूल, मृत्यु भी कबूल। फिर सुख कबूल, पर दुख भी कबूल, स्वास्थ्य कबूल, परन्तु बीमारी भी कबूल, मुनाफा कबूल, परन्तु नुक्सान भी कबूल। जैसा हो रहा है, सब कबूल। दरिया के बहाव में वह खुद को बहा लेता है, विरोध नहीं करता। इस को कहते हैं रब की रज़ा में इसने खुद को जोड़ लिया है:

जिधरि रब रजाइ वहणु तिदाऊ गंउ करे॥

(अंग १३८२)

जो हो रहा है, इसको प्रभु का हुक्म जान कर मीठा मान, शुक्राना कर, इस में परमानंद है। ऐसा करने से दृष्टि गहरी होती है और दूर तक नज़र मारने की भी शक्ति मिलती है। जैसे चिन्तक जीवन को आगे देखता है, तो बुढ़ापा व मृत्यु ही दिखाई देती है। सन्तजनों और महान् आध्यात्मिक खोजियों ने जीवन के आदि अन्त में नज़र मारी है। जीवन का आदि उनको पशु, वनस्पति दिखाई देता है और जीवन का भविष्य सिर्फ परमात्मा होना है, पूर्ण होना है। आखिर कितनी देर तक जीव अपूर्ण रहेगा, पूर्ण होना ही पड़ेगा।

सो जो मनुष्य होनी से सहमत हो जाते हैं, वह समझो परमात्मा से सहमत हो गए। जो परमात्मा से सहमत हो गया, वह परमात्मा से जुड़ गया। वह मनुष्य आनंदमयी होकर जीने लग जाता है और प्रभु का हुक्म खुशी से मानता है।

तूं करता सचिआरु मैडा सांई॥
जो तउ भावै सोई थीसी जो तूं देहि सोई हउ पाई॥

(अंग ११)

लोभ-मोह, प्रेम के संबंध

मनुष्य अक्सर मनुष्य से अपनी ज़रूरतों की वजह से, अपने लोभ की वजह से संबंध बनाते हैं। मनुष्य परमात्मा से भी अक्सर अपनी आवश्यकताओं की वजह से, अपने लोभ की वजह से संबंध बनाता है। यह किसी वक्त मेरे काम आ सकता है, कुछ दे सकता है। इसलिए इसको मैंने मित्र बनाया है, अन्यथा और कोई ऐसी बात नहीं है। यह लोभ का संबंध है। यह संबंध पशु भी बना लेते हैं। घास दिखाओ गाय पीछे आ जाएगी। रोटी का टुकड़ा दिखाओ, कुत्ता पीछे आ जाएगा। बाजरा दिखाओ, तीतर पीछे आ जाएँगे। क्या तीतर, गाय का मनुष्य से कोई प्रेम है ? नहीं, लोभ का संबंध है। यह लोभ का संबंध मनुष्य, मनुष्य से जोड़ सकता है। यह संबंध मनुष्य परमात्मा से भी जोड़ता है। कोई काम पड़ता है तो मनुष्य परमात्मा से भी यही लोभ का संबंध बनाता है। किसी जगह पर मनुष्य का अपना बल काम नहीं करता, कोई समस्या धन से भी हल नहीं होती, कोई समस्या रिश्तेदार, मित्र भी नहीं हल कर सकते। फिर यह परमात्मा को कहता है कि तू ही यह समस्या हल कर। फिर परमात्मा को याद करता है अपने लाभ कारण, अपनी आवश्यकता की वजह से। लोभ में अक्सर संबंध टूट जाते हैं, इसलिए लोग गुरु भी बदल देते हैं। इस गुरु से मेरी आवश्यकता पूरी नहीं हुई, अब और कोई गुरु ढूँढो। उससे भी नहीं पूरी हुई, अब और गुरु ढूँढो। इसी तरह पत्नी से आवश्यकता पूरी नहीं हुई या पति से आवश्यकता नहीं पूरी हुई तो दूसरी शादी, तीसरी शादी। मनुष्य परमात्मा से भी इसी तरह ही करता है, आवश्यकता नहीं पूरी हुई तो परमात्मा से भी अस्वीकृत हो जाता है, गुरु को भी बदल देता है। मगर परमात्मा पात्रता देखता है और यह भी देखता है कि इससे इसका नुक्सान तो नहीं होगा। जैसे बच्चा साँप से खेलना चाहता है, मगर माँ रोकती है, खेलने नहीं देती, बच्चा माँ को दुश्मन समझता है। मासूम बच्चा आग

में हाथ डालना चाहता है, जलती हुई आग इसको अच्छी लगती है, मगर माँ फिर रोकती है, वह फिर माँ को दुश्मन समझता है। मगर मासूम बच्चे को कौन समझाए कि तेरी माँग ही गलत है, तेरे माँगने से जो नहीं मिली, यह परमात्मा को मालूम है कि जो तुझे नहीं मिला, यह तेरे लिए ठीक नहीं था, मगर अज्ञानता-वश मनुष्य परमात्मा से अस्वीकृत हो जाता है:

अपुने लोभु को कउ कीनो मीतु॥ *(अंग १९५)*

यह मुझे कुछ दे सकता है, यह संबंध लोभ पर खड़ा है, लेने पर खड़ा है। जब मुझे जरूरत पड़ी, न दिया तो यह संबंध टूट जाएगा। यह संबंध छोटा संबंध है। मगर एक प्रेम का संबंध भी है। इसमें लेना कुछ भी नहीं, बस प्यार का संबंध है। इस में सब कुछ न्यौछावर करने को दिल करता है। यह प्रेम का संबंध भी मनुष्य, मनुष्य से जोड़ सकता है। जैसे श्रवण कुमार ने अपने माता-पिता से, जैसे लक्ष्मण ने अपने भाई राम से। लक्ष्मण सब कुछ न्यौछावर कर जंगल में राम के साथ गया। यह प्रेम का संबंध माँ-बाप, भाई-बहन, मित्र-रिश्तेदार किसी से भी हो सकता है। यह प्रेम का संबंध मनुष्य परमात्मा से भी जोड़ सकता है। मगर कोइ विरले ही हैं जो प्रेम का संबंध बनाते हैं। अधिकतर लोभ का ही संबंध बनाते हैं। अगर प्रेम माता-पिता, भाई-बहन या बच्चों से है तो भी यह सीमित है, परन्तु अगर परमात्मा से प्रेम है तो यह असीमित है। जैसे लहर से प्रेम हो सकता है, परन्तु अगर समुद्र से प्रेम है तो लहरें समुद्र की ही हैं, समुद्र से प्रेम है तो लहरों से खुद ही प्रेम। समुद्र से प्रेम हो तो सब कुछ उसमें ही आ जाता है। माता-पिता, बच्चे, भाई-बहन या मित्रों से अगर प्रेम है तो वह ऐसे है जैसे समुद्र को छोड़ कर सिर्फ लहरों से ही प्रेम है। अगर परमात्मा से प्रेम है तो यह पहचान होगी कि यह सभी से प्रेम करेगा, पूरे संसार को प्रेम करेगा, परन्तु अगर किसी एक व्यक्ति से प्रेम है तो फिर यह इस तरह है जैसे समुद्र की एक लहर से प्रेम है।

कई बार हम जिसको प्रेम समझते हैं, वह प्रेम नहीं होता, वह तो मोह होता है। अक्सर माता-पिता अपने बच्चों से मोह ही करते हैं क्योंकि प्रेम में कोई माँग नहीं होती, परन्तु माता-पिता बच्चे से आशा करते हैं कि आज हम इसका पोषण करेंगे, कल को यह हमारी

आवश्यकता पूरी करेगा, कल को यह हमारा बुढ़ापे में पोषण करेगा। यह मोह है, मगर प्रेम में किसी तरह की कोई माँग नहीं होती, कोई लेने का संबंध नहीं होता। प्रेम में तो सब कुछ न्यौछावर करना होता है। जिस से प्रेम हो, उसी पर सब कुछ न्यौछावर करने को दिल करता है, परन्तु प्रेम का संबंध तो विरले ही बनाते हैं। गुरु, परमात्मा तो मिलता ही सिर्फ प्रेम से है। कलगीधर पातशाह फुरमाते हैं:

साचु कहों सुन लेहु सभै
जिन प्रेम कीओ तिन ही प्रभ पाइओ॥

मोह प्राकृतिक है। प्रकृति सभी जीवों के अंदर मोह को जन्म देती है, क्योंकि प्रकृति चाहती है कि जीवन पलना चाहिए, जीवन फलना-फूलना चाहिए और यह मोह के आसरे पर फैलता है। गुरु अमरदास जी फुरमान करते हैं:

कुरबाणु कीता तिसै विटहु जिनि मोहु मीठा लाइआ॥

(अंग ९१८)

बलिहारी जाते हैं उस परमात्मा के, जिसने मोह के भीतर इतनी मिठास डाल दी है। मिठास न डालता तो बच्चे नहीं पल सकते थे। इसलिए ममता की मारी हुई माँ के लिए औलाद एक बहुत मीठा फल है। यह जीवन के लिए एक प्रवृत्ति है, जो कि परमात्मा द्वारा एक वरदान है। विद्वान ऐसा कहते हैं कि मोह की आवश्यकता है। इसके बिना बच्चों की परवरिश नहीं हो सकती, बच्चों की संभाल नहीं हो सकती। इसीलिए हम देखते हैं कि मोह पशु-पक्षियों में भी है। पक्षी भी उड़ कर दूर-दूर से रिज़क ढूँढ कर लाते हैं और लाकर अपने बच्चों के मुख में चोगा डालते हैं। ख़ूँखार जानवर, जानवरों का शिकार करके माँस अपने बच्चों के आगे डालते हैं, परन्तु पशु-पक्षियों में यह मोह कुछ वक्त होता है। जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं, इनका मोह कम हो जाता है। गाय का दूसरा बछड़ा हो गया तो पहले बछड़े को नज़दीक नहीं आने देती। इनके बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते हैं, इनका मोह खत्म हो जाता है, क्योंकि आवश्यकता ही नहीं रही और इसके अतिरिक्त संबंध बनाने की उनके भीतर क्रिया ही पैदा नहीं होती। यह मोह मनुष्य माँ में बहुत ज़्यादा है। मोह-वश बच्चे को बार-बार चूमती है, सीने से लगाती है। छोटे से बच्चे को माँ राजा बेटा, रानी बिटिया कह कर

पुकारती है और खुद नौकरानी बन जाती है। खुशी से उस की सेवा करती है, उसका मल-मूत्र साफ करती है। उसको नहला रही है, उसको अपने शरीर का निचोड़ (ऊर्जा) जो दूध है, पिला रही है, उसको ताकत दे रही है। खुद बे-आराम होकर बच्चे को आराम देती है। खुद दुखी होकर बच्चे को हर प्रकार का सुख देती है। उस पर बलिहारी जाती है, उसको देख कर जीती है। बच्चा पिता की पीठ पर हाथ लगाता है तो पिता की छाती में ठंडक आ जाती है। बड़े-बड़े ख़ूँखार दरिन्दे भी अपने बच्चों को सीने से लगा कर रखते हैं। उनकी रखवाली करते हैं क्यों ? क्योंकि मोह एक रस है। इस मोह को प्रेम में बदलना है। जिससे मोह हो, उसके तल पर मनुष्य कोमल हो जाता है। अगर मोह भी न हो तो फिर कोमलता बिल्कुल खारिज हो जाती है। और मनुष्य कठोरता पूर्ण व्यवहार करता है। देखा गया है कि बहुत बुद्धि के तल पर रुका हुआ मनुष्य मोह से वंचित हो जाता है। देखने में आ रहा है कि पश्चिमी दुनिया में बच्चों के प्रति मोह कम होता जा रहा है, खत्म होता जा रहा है। अगर मनुष्य मोह से खाली है तो फिर सर्पणी से तुलना दी जाएगी। उसका अपने बच्चों से कोई मोह नहीं है। वह लगभग डेढ़ मास तक अण्डों को सेकती है। बैठी-बैठी भूखी प्यासी हो जाती है जैसे ही बच्चे अण्डों में से निकलते हैं, वह बच्चों को खाना शुरू कर देती है। मोह में लीन माँ बच्चों को खिला तो सकती है, मगर खा नहीं सकती। मनुष्य माँ बच्चे को अपना आप खिला रही है, अपना दूध पिला रही है। आखिर भोजन से खून बनता है और खून से ही दूध बनता है। वह अपना खून पिला रही है। क्योंकि मोह से खाली है सर्पणी, इसलिए अपने बच्चों तक को खा जाती है। इसलिए कभी-कभार मानव दुनिया में भी ऐसी घटना घट जाती है। कोई माँ मोह से खाली हो गई, चाहे वह कुछ वक्त खाली हो गई। किसी काम के वेग में हो गई, किसी लोभ के वेग में हो गई, किसी अहंकार के वेग में हो गई, अपने बच्चों को ही मार बैठी। पूरी दुनिया में ऐसी घटनाएँ हुई हैं और हो रही हैं कि कोई माँ अपने बच्चों को ही मार बैठी, कोई पिता अपने बच्चे ही कुर्बान कर बैठा। ऐसा कभी-कभार मानव दुनिया में होता है। चाहे कम ही होता है, नाममात्र ही होता है, मगर होता है। मोह प्रकृति की तरफ से दिया गया वरदान है, सौगात है। इसके बिना बच्चों की परवरिश होनी ही नहीं थी। सर्पणी का कोई

एकाध बच्चा, जो उसकी नज़र से बच जाता है, जो इधर-उधर हो जाता है, बस वही बच जाता है, मगर मानव माँ अपने बच्चों को नज़रों से ओझल ही नहीं करती। नज़रों से परे ही नहीं करती, पशु-पक्षियों से मानवता में मोह ज़्यादा है और यह मोह प्रेम में बदलना चाहिए। अगर प्रेम उत्पन्न न हो तो मनुष्य उसी तल पर रह जाता है, जहाँ कि पशु हैं, पशु मोह से ऊँचे नहीं उठ सकते, मगर प्रेम मनुष्य को मनुष्यता से ऊँचा उठा देता है। मनुष्य ने मोह को विकसित करना है और प्रेम में तबदील करना है। पशु तो इसको विकसित नहीं कर सकते और अगर मनुष्य भी मोह तक ही सीमित रहा तो फिर तो पशुओं जैसा ही है :

करतूति पसू की मानस जाति॥

मोह फैल जाए, सभी बच्चों तक फैल जाए तो ऐसे मनुष्य ने समझो कि मोह के शिखर को छू लिया। प्रेम की महानता भी तभी होती है, जब सभी से प्रेम हो जाए, सभी मित्र बन जाएँ, सभी अपने बन जाएँ और यह तब होता है, जब परमात्मा से प्रेम हो जाए, जब प्रभु से प्रेम करें, प्रभु को याद करें, अपना बना लें तो पूरा जीवन आनंदमयी हो जाएगा। गुरु कृपा करें हमारा सभी का जीवन, लोभ के संबंध, मोह के संबंध से ऊँचा उठ कर सभी से प्रेम के संबंध कायम करे।

इकु सजणु सभि सजणा इकु वैरी सभि वादि ॥

एक पश्चिमी विद्वान का कहना है कि मित्रों में जीना स्वर्ग में जीना है और दुश्मनों में जीना नरक में जीना है। उसने यह सीमित से बोल कहे हैं। गुरमति कहती है कि समूचे संसार को सज्जन बना। किस तरह बनाएँ समूचे संसार को सज्जन। पूरे का पूरा सज्जन तो कई दफा अपना परिवार भी नहीं बनता, भाई भी नहीं बनते, पड़ोसी भी नहीं बनते। समूचे संसार को सज्जन बनाएँ, सीमित-सा जीवन और इतना बड़ा संसार, किस तरह मित्र बनाएँ। गुरु साहिब हमें युक्ति बताते हैं :

इकु सजणु सभि सजणा इकु वैरी सभि वादि॥

अगर तुम कहीं एक को सज्जन बना लो तो पूरे संसार के मनुष्य तुम्हारे सज्जन ही होंगे। एक परमात्मा सज्जन बन गया, सारे ही सज्जन बन गए। सभी जगह सज्जन ही सज्जन मिलेंगे और अगर तूने एक से बैर रखा हुआ है परमात्मा को मित्र नहीं बनाया तो अब तुम कहीं भी चले जाओ, वैरियों के ही दर्शन होंगे। दुश्मन ही दुश्मन मिलेंगे। ऐसे लोग मिलते हैं जो कहते हैं कि गलियों की घास भी मेरी वैरी है। सो एक बात स्पष्ट हो गई कि इसने अभी परमात्मा को सज्जन नहीं बनाया और जो परमात्मा को सज्जन बना लेते हैं, उनकी मनोवृत्ति फिर यह हो जाती है :

सभु को मीतु हम आपन कीना हम सभना के साजन॥
दूरि पराइओ मन का बिरहा ता मेलु कीओ मेरै राजन॥

(अंग ६७१)

तो परमात्मा को सज्जन कैसे बनाएँ? परमात्मा को सज्जन बनाने का एक तरीका है, उस से जुड़ जाएँ। पूरी दुनिया के पथप्रदर्शक पुरुषों ने परमात्मा से जुड़ने का एक ही तरीका बताया है, उसको स्मृति में रखना, उसको याद करना, उसका सिमरन करना, उसका जप करना,

प्रभु के गुण गाने। परमात्मा के गुण गाते-गाते ऐसे मनुष्य का समूचे संसार से भाईचारा हो जाता है और स्वर्ग का जन्म हो जाता है। प्रभु के गुण गाते-गाते प्रत्येक में गुण दिखाई देने लगते हैं। सभी प्यारे लगने लगते हैं। यह ठीक है कि प्रत्येक मनुष्य के पास कुछ अवगुण भी होते हैं, मगर यह भी सही है कि प्रत्येक मनुष्य के पास कुछ गुण भी ज़रूर होते हैं। प्रभु को सज्जन बना लेने से, उसके गुण गाने से मनुष्य को फिर हरेक में गुण ही दिखाई देते हैं, अवगुण नहीं। ऐसे मनुष्य को अवगुण खुद में दिखाई देते हैं:

हम नही चंगे बुरा नही कोइ॥ *(अंग ७२८)*

इस तरह सारा संसार ही मित्र बन सकता है, सारा संसार ही मित्र बन जाता है।

मूर्खता के तीन लक्षण

व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म और व्यर्थ ज्ञान—यह मूर्खता के तीन लक्षण हैं। संसार से, किसी दूसरे से सुख की आशा रखनी, यह व्यर्थ की आशा है। भाई से सुख मिलेगा, पुत्र से सुख मिलेगा, पत्नी से या पति से सुख मिलेगा, माता-पिता, बहन, पड़ोसी या मित्र से सुख मिलेगा। यह आशा करनी व्यर्थ है और मूर्खता का प्रथम लक्षण है। माता-पिता, बहिन-भाई, पति-पत्नी, मित्र-रिश्तेदार किसी वक्त आवश्यकता की पूर्ति तो कर सकते हैं, मगर सुख नहीं दे सकते। जिन-जिन से तूने सुख की आशा की हुई है, उन्होंने भी तुझ से सुख की आशा रखी हुई है। हम उनसे सुख चाहते हैं, वो हम से सुख चाहते हैं और जिस दिन आशा पूरी न हुई तो उसी दिन से मित्रता दुश्मनी में बदल जाती है। भाई-भाई का दुश्मन हो जाता है। दूसरों से सुख की आशा, संसार से सुख की आशा, व्यर्थ है। मनुष्य कहता है कि मुझे एक अच्छा मकान मिल जाए तो मैं सुखी हो जाऊँगा। कौन बताए कि जिनके पास अच्छे मकान हैं वह भी रोते हैं कि मुझे एक पुत्र मिल जाए, मैं सुखी हो जाऊँगा। जिन के पास चार-चार पुत्र हैं वह भी दुखी हैं। मुझे अच्छा कारोबार मिल जाए, मैं सुखी हो जाऊँगा। अधिकतर के अच्छे कारोबार हैं, वह बेचैन और परेशान हैं। चाहत थी सुख की, मिला दुख। संसार से किसको सुख मिला है, व्यर्थ आशा। संसार से आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती हैं और ज़रूरतों की तो सीमा है, मगर लोभ की कोई सीमा नहीं है। संसार तो ऐसा है कि:

सगल स्रिसटि को राजा दुखीआ॥

संसार सुख नहीं दे सकता। जिनकी ज़रूरतों की पूर्ति हो गई है, वह भी दुखी हैं। सर्व-सम्पन्न देश अमेरिका, परन्तु सभी से दुखी देश है। 60 प्रतिशत लोग रात को नींद की गोलियाँ लेकर सोते हैं और बहुत बड़ी संख्या में लोग आत्महत्या भी करते हैं।

मूर्खता का दूसरा लक्षण है, व्यर्थ कर्म। वह कर्म जो धार्मिक कर्म ही नहीं हैं, मगर मनुष्य हज़ारों वर्षों से धार्मिक कर्म समझ कर किए जा रहा है। सिक्खों में भी ऐसे बहुत कर्म हैं, जो धार्मिक कर्म नहीं हैं, मगर सिक्ख धार्मिक कर्म समझ कर किए जा रहे हैं। इसको कहते हैं व्यर्थ कर्म।

मूर्खता का तीसरा लक्षण है, व्यर्थ ज्ञान। वह ज्ञान जो जीव एकत्र किए जा रहा है, मगर उसको व्यवहार में कभी नहीं लाता। धार्मिक ज्ञान तो बहुत एकत्र कर लिया है, मगर ज़िन्दगी में कोई परिवर्तन नहीं आया। ऐसे एकत्र किए ज्ञान का क्या फायदा? अगर कोई ज़िन्दगी में बदलाव ही नहीं आया। इसको कहते हैं व्यर्थ ज्ञान।

दान और दानी

जब किसी मनुष्य के भीतर संतोष पैदा होता है तो वह दान करता है। मगर महाराज कहते हैं कि एक विपरीत बात चल पड़ती है, देकर माँगता है, **'दे दे मंगहि'** कितना माँगता है, **'सहसा गूणा'** ज़्यादा ही माँगता है, कम नहीं माँगता। हे बाबा! मेरी दुकान भी चलाना, मेरे पुत्र को भी अच्छा करना, मुझे इज़्ज़त भी देना, मान देना और बड़ी लम्बी-चौड़ी लिस्ट। अब जो पाँच-दस दमड़े इसने माथा टेका है, उसके बदले बाबा इसके सारे ही काम करे और अगर न करे तो फिर कोई और बाबा ढूँढा जाएगा। देकर माँगता है, सैंकड़ों गुणा ज़्यादा माँगता है। मैं हैरान होता हूँ पाँच अथवा दस प्रतिशत ब्याज हो सकता है। मानो बहुत जुल्म सही तो बीस प्रतिशत मान लेते हैं और अगर सामने वाले की खाल ही उतारनी है तो शत-प्रतिशत ही सही। मगर यहाँ तो

दे दे मंगहि सहसा गूणा ॥

देकर हज़ार गुणा ज़्यादा माँगता है और यहाँ भी बस नहीं, साथ :

सोभ करे संसारु ॥ *(अंग ४६६)*

फिर दुनिया शोभा भी करे कि मैं दानी हूँ।

सच मानो, दानी सिर्फ परमात्मा के बिना और कोई नहीं। यह धन पदार्थ सब उसी के दिए हुए हैं। किसी भ्रम में मत पड़ना। यह तन किसका दिया हुआ है। जो वस्तु बाज़ार से खरीदी हो या व्यक्ति ने खुद बनाई हो उसको तो वह कह सकता है कि मेरी है और जो व्यक्ति ने बनाई ही नहीं, खरीदी ही नहीं, वह व्यक्ति की कैसे हो सकती है। यह आँखें बाज़ार से खरीदी नहीं जा सकतीं, यह टाँगें, बाजू भी नहीं मोल लिए जा सकते। दिल और दिमाग भी नहीं खरीदे जा सकते और फिर जो वस्तु खरीदी नहीं जा सकती, बनाई नहीं जा सकती, वह तेरी किस तरह हो सकती है? यह सूर्य की रौशनी, यह चाँद की

रौशनी। यह वर्षा की बूँदें हमें सभी दान में मिल रही हैं। यह हवा भी हमें दान में मिल रही है। यदि सूर्य की रौशनी हमें न मिले तो क्या मनुष्य जिन्दा रह सकता है ? अगर हवा हमें न मिले तो क्या हम जिन्दा रह सकते हैं ? हर वस्तु प्रभु हमें दान में दे रहा है। यह मन, तन, धन सभी प्रभु का ही दिया हुआ है। जिन्होंने इस बात को समझा है, वह कह देते हैं :

मनु तनु तेरा धनु भी तेरा॥
तू ठाकुरु सुआमी प्रभ मेरा॥ *(अंग १०६)*

मैं अर्ज़ कर रहा था कि

दे दे मंगहि सहसा गूणा सोभ करे संसारु॥

देकर हज़ारों गुणा माँगना और फिर दुनिया शोभा भी करे।

एक बात याद आई, पटना साहिब एक दफा मैं संध्या के वक्त बैठा रहरासि साहिब का पाठ कर रहा था। एक बुजुर्ग बाबे को देखा, वह आया, पोटली एक तरफ रखी और जो संगमरमर का फर्श था, वहाँ कुछ ढूँढने लगा। मेरा जब ध्यान इस वृद्ध पर गया कि कुछ ढूँढ रहा है और जितने समय तक मैंने पाठ की समाप्ति की, तब तक वह कुछ ढूँढता ही रहा। मैंने सोचा कि बेचारे के नेत्र कमज़ोर हैं, कोई वस्तु गिर गई होगी। मैं पास गया और पूछा कि बाबा जी क्या खो गया है, काफी समय से ढूँढ रहे हो ? कहने लगा, कुछ नहीं ज्ञानी जी, पिछले वर्ष मैं हज़ार रुपये दे गया था और मैनेजर ने वायदा किया था कि फर्श पर आपका नाम लिखेंगे और मैं देख रहा हूँ कि कहाँ लिखा है। मैंने कहा बाबा, यहाँ लोग परमात्मा का नाम ढूँढने आते हैं और आप अपना नाम इस घर में ढूँढने आए हो और अगर तुम्हें यहाँ भी अपने नाम की जरूरत है तो फिर गुरु का नाम कहाँ से ढूँढोगे ? कौन-सी जगह से ढूँढोगे ?

सत्य मानो, गुरुद्वारों में 99 प्रतिशत मनुष्य अपना नाम ही ढूँढने आते हैं। अपने नाम की ही चर्चा करने आते हैं। मैंने उस दिन महाराज के आगे अरदास की कि सच्चे पातशाह! जिन व्यक्तियों ने तुम्हारा सफेद फर्श सफेद नहीं रहने दिया, तुम्हारी सफेद दीवारें सफेद नहीं रहने दीं, उन्होंने अपना मन कहाँ सफेद रहने दिया होगा ? एक अहम् था वह

तेरे फर्श पर छा गया। तेरी दीवारों पर छा गया। इनको यह नहीं समझ आया कि:

तेरो कीआ तुझहि किआ अरपउ
नामु तेरा तुही चवर ढोलारे॥ (अंग ६९४)

और जब शरीर उसने दिया है, शरीर की ताकत उसने दी है, तू दानी किस तरह हो सकता है। नहीं, तुम एक साधन ज़रूर हो, कर्ता नहीं। बात को समझ। साहिब श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं, जितने भी गुण हैं, यह मेरे नहीं:

सभि गुण तेरे मै नाहि कोइ॥

हे प्रभु! मुझ में कोई गुण नहीं। अगर तू मुझ में क्षमा न डालता, संतोष न डालता, विनम्रता और ज्ञान न डालता तो यह कहाँ होना था। यह दान देना कर्म तो अच्छा है, परन्तु अगर नीयत भी ठीक हो। ऐसा देखने में आया है कि कोई देखे तो ही दान करना है, वैसे नहीं। जब कोई न देखे तो मनुष्य मंदिर में, मठ में, गुरुद्वारे में खाली हाथ माथा टेकने में संकोच नहीं करता, मगर जब कोई देख रहा हो तो खाली हाथ माथा टेकना हो तो मुश्किल हो जाता है। यह माया इसलिए गुरु के आगे रखता है कि लोग देखें। बड़े-बड़े दान दिए जाते हैं और देने वाला यह भी चाहता है कि मेरे दिए हुए दान प्रत्येक की ज़ुबान पर हों, ज़िक्र हो। यह ज़िक्र किसी की ज़ुबान पर एक दिन हो सकता है, दो दिन हो सकता है, मगर मनुष्य तो हर समय चाहता है कि हर वक्त, हर समय मेरे दिए हुए दान की चर्चा हो। मनुष्य फिर मंदिरों पर, गुरुद्वारों की दीवारों पर फर्श पर अपना नाम लिखवाता है ताकि लोगों को पता चले कि मैं दानी हूँ। दिए हुए बर्तन, सामग्री-सामान पर अपना नाम लिखवाता है कि दूसरे जाने कि मैं दानी हूँ। कहीं धर्मशाला बनवाता है, कहीं मंदिर बनवाता है, कहीं किसी जगह पर कोई एकाध कमरा बनवाता है तो काफी बड़ी तख्ती अपने नाम की लिखवाता है। सो धर्म के नाम पर शाला नहीं बनी, अपने नाम पर बनी है। जिसके नाम की तख्ती लगी हुई है। लोग जाने कि हमने बनवाया है। इस भावना के अधीन जो दान है, यह पाखण्ड है। अधिकतर दिया हुआ दानियों का दान सिवाय पाखण्ड के अन्य कुछ नहीं है। केवल लोगों की नज़रों में ऊँचा होने के लिए दिया हुआ दान सब पाखण्ड है।

जब दान की प्रदर्शनी है तो दान, पाखण्ड है। दान के साथ नीयत यह कि जगत् प्रशंसा करे, संसार बड़ाई करे और मेरा नाम हो तो ऐसा दान पाप है और कई दानी पूरी जिन्दगी दान करते रहते हैं, परन्तु बेईमानी भी करते रहते हैं। हृदय पापी का पापी। दान से भी व्यक्ति पुण्य का पात्र नहीं हो सकता, ज्ञान से भी नहीं हो सकता। कथा और कीर्तन से भी कुछ नहीं बन सकता, अगर भीतर से नीयत साफ नहीं। भक्त कबीर जी कहते हैं:

पाप पुंन दुइ एक समान॥

आँखें खुल गईं मेरी, जिस दिन मैंने यह पंक्ति पढ़ी कि पाप तो पाप है, पुण्य भी पाप है। भक्त जी कहते हैं कि पाप करता है व्यक्ति अहंकारवश होकर, लोभवश होकर, तृष्णावश होकर, ईर्ष्यावश होकर और अगर कोई व्यक्ति पुण्य भी कर रहा है, दान भी दे रहा है, अहंकारवश होकर, लोभवश होकर तो भक्त जी कहते हैं, फिर पाप व पुण्य में अन्तर क्या हुआ। ऐसे पुण्य का भी कोई फल नहीं, लोभी रहेगा, ठग रहेगा। सो बड़े-बड़े दानी फरेबी देखने को मिलते हैं। बड़े-बड़े ज्ञानियों के हृदय मलिन नज़र आते हैं। जिस दिन यह समझ आ जाए कि:

तेरो कीआ तुझहि किआ अरपउ
नामु तेरा तुही चवर ढोलारे॥ *(अंग ६९४)*

जब सब उस प्रभु का दिया हुआ है तो मैं दानी नहीं हो सकता। यह धन-पदार्थ तो सब उस प्रभु की कृपा से मिलता है और उस प्रभु ने जो हमें धन-दौलत दी है। उस में से ही हमें दसवंध निकालने का हुक्म है। नौ हिस्से तू अपने पास रख, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर और सिर्फ एक हिस्सा दान कर। दसवाँ हिस्सा (दसवंध) से किसी ज़रूरतमंद की ज़रूरत पूरी कर, धर्मखाते निकाल, किसी गरीब के मुख में अन्न का दाना डाल, दसवंध निकाल। मैं अर्ज़ करूँ, एक व्यक्ति दस करोड़ का मालिक है और एक व्यक्ति के पास सिर्फ दस रुपये हैं। जिसके पास दस करोड़ हैं, उसका एक करोड़ दिया हुआ दान और जिसके पास सिर्फ दस रुपये हैं उसका एक रुपया किया हुआ दान बराबर है। दसवंध बराबर, इस चक्कर में मत पड़ जाना कि एक करोड़ का दान करने वाला महान् दानी है, कतई नहीं। अगर दस में से उसने दो रुपये दान किए हैं, जिसकी कुल पूँजी ही दस रुपये है,

तो वह महांदानी है और अगर दस करोड़ में से चन्द हज़ार रुपये ही दान किए हैं, यह तो महां कंजूस है, यह तो दसवंध भी नहीं निकला और जो दसवंध नहीं निकालते:

जो बाबे के दाम न दे हैं तिन के ग्रिह बाबर के लेहैं।

धन का जो दसवंध नहीं निकालते, उस धन के भागी चार हैं। जो दसवंध नहीं निकालते, चोर ले जाएगा, आग लग जाएगी, रोग ले जाएँगे, बीमारियाँ ले जाएँगी या कोई और हादसा ले जाएगा। दानी दसवंध निकाल सकता है। दस रुपये कुल हैं, एक रुपया दान कर दिया है, महांदानी है। दस करोड़ का मालिक है, दस हज़ार दान कर दिया है, कुछ भी नहीं, कंजूस है। उस एक रुपये के सम्मुख यह दस हज़ार कुछ भी नहीं है।

मुझे दिल्ली में एक सज्जन कहने लगा, आज के युग का महांदानी बिरला है। देखो दिल्ली में बिरला मंदिर, कलकत्ते में बिरला मंदिर, जयपुर में बिरला मंदिर, हैदराबाद में बिरला मंदिर, हरिद्वार में बिरला मंदिर, अनेक तीर्थों पर बिरला मंदिर, इतने मंदिर यह तो बड़ा दानी है, बहुत बड़ा भक्त है, बहुत बड़ा सन्त है। मैंने कहा, नहीं पहले तो भगवान के मंदिर नहीं बनाए इसने, बिरला मंदिर हैं। दूसरा, कबीर ने एक भी मंदिर नहीं बनाया, और बना भी नहीं सकता था। कपड़े बुनाई करने, वही बाज़ार में बेचने, उससे मुश्किल से दो-टाईम की रोटी चलती थी। वह तो मंदिर बना नहीं सकता था। मैंने कहा, करोड़ों बिरले एकत्र करें, कबीर के चरणों की धूल भी नहीं, कौन से चक्करों में पड़े हो। उसके घर में कोई पैसा नहीं था, सिर्फ सूत पड़ा था, रंगा हुआ सूत, जिसके अभी खेस (एक तरह की चादर) बनाने थे। घर में सन्त आ गए, वही सप्तरंगी सूत ही बाज़ार में बेच आया और उन सन्तों को लंगर खिला दिया। करोड़ों बिरले कबीर के इस दान पर कुर्बान किए जा सकते हैं। कुल पूँजी थी जो, वह पूरी की पूरी दान दे दी।

तीन तरह की वृत्तियाँ मनुष्य में काम करती हैं। एक तो वह हैं जिनके भीतर दान की वृत्ति प्रबल है। देना ही देना है, लेना कुछ भी नहीं और लेने की कोई तमन्ना भी नहीं, इसे दानी परोपकारी कहा जाता है। इसको दान कहते हैं। दूसरे वह हैं, जो देने की वृत्ति भी रखते हैं, मगर लेने की भी उतनी चाहत है, इसको व्यापारी कहा जाता है।

देना-लेना, लेना-देना, व्यापार। जिसको आप दान कहते हो, वह दान नहीं, व्यापार है। मंदिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारे में व्यापार ही चल रहा है। दान तो कहीं-कहीं है। तीसरा वर्ग उनका है जो सिर्फ लेना ही जानते हैं और हर समय हरेक से लेने की ही इच्छा रखते हैं। इस तरह के मनुष्यों को लोभी और कंजूस कहा जाता है। लेना ही लेना है, परिवार से, मित्रों से, गुरु से, संसार से लेना है। प्रत्येक से लेना है। बदले में कुछ भी नहीं देना, कंजूस, महा-कंजूस और गुरुबाणी ऐसा कहती है :

सूमहि धनु राखन कउ दीआ मुगधु कहै धनु मेरा॥

(अंग ४७९)

सूम (कंजूस) व्यक्ति धन का रखवाला होता है, चौकीदार होता है, मालिक नहीं होता, मालिक तो इस्तेमाल करता है। सूम के धन का शायद उसका परिवार भी पूर्ण तौर पर प्रयोग नहीं कर सकेगा, सुख प्राप्त नहीं कर सकेगा। वह न तो खुद खाता है, न दूसरों को खाने देता है। न खुद सुख लेता है, न दूसरों को सुख लेने देता है। माल-सामग्री अपने घर में भरता जा रहा है और शायद यह कभी उनका प्रयोग भी न कर सके। स्वाभाविक एक घटना मुझे याद आ गई है, मेरी ज़िन्दगी में घटी थी। मेरा एक सहपाठी था। बचपन में एक साथ पढ़ते थे। बाद में देश का विभाजन हो गया, बिछड़ गए। मित्रता थी हमारी बहुत गहरी। कोई 25-30 वर्ष के पश्चात् मिले बाम्बे (मुंबई), बड़ा खुश हुआ। पुरानी बातें उसने दोहराईं, बहुत खुश हुआ और मुझे भी खुशी हुई। दूसरे दिन हठ करने लगा कि मेरे घर चलो। फैक्टरी का मालिक था। 100-200 व्यक्ति काम करता था। घर में नौकर-चाकर, अच्छा संपन्न, गुरुद्वारे में रोज़ाना आना, सत्संगियो से मेल-मिलाप, सभी जानते थे। घर में गए तो जब वापिस चलने लगा तो उसकी पत्नी मुझे कहने लगी कि मुझे बहुत खुशी हुई है कि आप इनके बचपन के दोस्त हो, यह आपके बचपन के मित्र हैं, बहुत खुशी हुई है और फिर कहने लगी, इनका व्यवहार सभी से ठीक है, फैक्टरी के सभी कर्मचारियों से इनका व्यवहार ठीक है, गुरुद्वारे का सारा स्टाफ भी इनसे खुश है। मगर इनका व्यवहार हमारे साथ ठीक नहीं है, बच्चों से ठीक नहीं, आप समझाएँ, यह आपके मित्र हैं, बचपन के दोस्त हैं। इनका व्यवहार हमारे साथ ठीक नहीं है, बड़े रुक्ष हैं। मैं भी सुनकर बड़ा

हैरान हुआ क्योंकि बचपन का कुछ सिलसिला मुझे याद था, अच्छे स्वभाव का था, बड़ी नम्र तबीयत का था, बड़ा मिलनसार था। अब मैं सुन रहा था उसकी पत्नी से, वह भी उसके सामने ही कह रही थी, बात छुपाकर भी नहीं बोली थी। उस समय मैंने उसको कुछ कहना उचित भी न समझा और कोई बात मुझे सूझी भी नहीं कि मैं क्या कहूँ। घरेलू मामला था, मैं चुप रह गया। अगले दिन गुरुद्वारा साहिब में कथा की समाप्ति के पश्चात् मेरे कमरे में आ गया और मुझे मौका मिल गया कि पूछ ही लें, और मैंने कहा, मित्र, तेरा स्वभाव जो बड़ा अच्छा होता था, अब भी अच्छा है, सभी खुश हैं, पर तेरा सलूक अपने बच्चों से ठीक क्यों नहीं ? अपनी पत्नी से अच्छा क्यों नहीं, ऐसा क्यों ? मालूम है मुझे क्या कहने लगा, यह बच्चे, पत्नी मेरा प्यार हैं, मुझे जान से भी प्यारे हैं, ऐसी कोई बात नहीं। मैंने कहा आपके सामने उन्होंने गिला किया है कि इनका व्यवहार हमारे साथ ठीक नहीं है। आगे से कहता है, ज्ञानी जी, खून-पसीना एक करके मैंने यह फैक्टरी बनाई है। आज चार कोठियाँ हैं मेरे पास। समाज में मेरा मान-सम्मान है। ज़रा हँस कर बच्चों से बोलो तो बच्चे कह देते हैं कि कार पुरानी हो गई है, नई लेनी है। अगर पत्नी से ज़रा ढंग से बात करो तो उसको शापिंग ही सूझती है। यह लेना है वह लेना है। लंबी-चौड़ी लिस्ट रख देती है और मैंने खून-पसीना एक करके यह पैसा कमाया है तो हम घर में खफा रहते हैं, डर कर कोई नज़दीक ही नहीं आता। अंदर से मुझे बहुत प्यारे हैं। मैंने कहा तू धन का चौकीदार है, और जो यह तेरी फैक्टरी चलती है तू उसका भी चौकीदार है, तू मालिक नहीं है, रखवाला है :

सूमहि धनु राखन कउ दीआ मुगधु कहै धनु मेरा॥

(अंग १७९)

सूम (कंजूस) व्यक्ति धन का रखवाला होता है, चौकीदार होता है, मालिक नहीं क्योंकि धन का प्रयोग ही नहीं करता। कंजूसी की वजह से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति भी ठीक तरह से नहीं कर सकता, फिर रखवाला ही हुआ, चौकीदार ही हुआ, मालिक तो न हुआ। सारी ज़िन्दगी रखवाली ही करता रहा, उसके पश्चात् धन किसी और के पास चला गया। सारी ज़िन्दगी दौलत ही एकत्र करता रहा, मगर प्रयोग न की। लेना ही लेना, लेना ही लेना, सूम। लेना-देना, देना-लेना

व्यापार, देना ही देना, देना ही देना दान। करोड़ों में कोई एक- आध ही दानी होता है, बाकी सभी व्यापारी। धंधे में जैसे देन-लेन होता है, इस तरह दान भी धंधा बन कर रह गया है, व्यापार बन कर रह गया है। पाठ, पूजा, कथा-कीर्तन यह भी एक लेन-देन बन गया है। धर्म की भेंट तो धन हो सकता है, धर्म की कीमत धन नहीं हो सकता। कीर्तन और कथा की भेंट हो सकती है, पाठ का नज़राना हो सकता है। मगर पाठ का मूल्य, कीर्तन का मूल्य, कथा का अगर मूल्य है तो कथा व्यापार है कीर्तन व्यापार है और पाठ पूजा व्यापार है। अहंकार तो मैं नहीं करता, मुझे 45 वर्ष हो गए हैं कथा करते। कभी-कभार कई पूछ लेते हैं नादानी करके, ज्ञानी जी, मूल्य कितना लोगे। हैरान हो जाता हूँ, कथा का मूल्य, मैंने कहा यह तो नज़राना होता है, भेंट होती है, मूल्य तो नहीं होता। कहता सभी मोल करते हैं और धीरे-धीरे जब मुझे पता चला, मुझे ऐसे नज़र आया कि कीर्तन व्यापार है, कथा व्यापार है, धंधा है। प्रबंधक और श्रोता यह भी व्यापारी हैं, यह भी मोल करते हैं। प्रबंधक कौन से कामयाब माने जाते हैं ? कितना बैंक-बैलेंस है, कितने पैसे बचाए हैं, कितनी बिल्डिगें बनाई हैं। गुरुपर्व मनाया, कीर्तन समागम कराया, कितना बचाया है, प्रबंधकों की कामयाबी इस में है। कितने सिख बने हैं, कितनों की सुरति लगी है, कितने गुरु के मार्ग पर चले हैं, यह कोई नहीं देखता। फेल हैं प्रबंधक भी, क्योंकि यह भी व्यापारी हैं। धार्मिक स्थान पर मनुष्य की महिमा भी धन पर खड़ी है। ठीक है, धन की निन्दा नहीं है, धन की ज़रूरत है, मगर कीर्तन की भेंट होती है, कथा की भेंट होती है। मगर मोल करना यह तो व्यापार है और आज हम यह व्यापार आम देख सकते हैं। हाँ, यह ठीक है कि बीज नाश नहीं, मगर साधारणतः व्यापक है, वह तो धर्म नहीं है, धंधा ही है। धार्मिक दुनिया में यह बोल आम सुनने को मिलते हैं कि अमुक सन्त की मार्किट है। अमुक कीर्तनिए की बहुत अच्छी मार्किट है, अमुक कथा-वाचक की बहुत अच्छी मार्किट है। धंधे के शब्द, धंधे के बोल आज हम धार्मिक जगत् में देख सकते हैं। जीवन का लक्ष्य अगर धन ही है तो यह वैश्य वृत्ति है। पाठ-पूजा, कथा-कीर्तन बेचना, मोल करना यह वैश्य वृत्ति ही है, वैश्य एक बाज़ारी वृत्ति का नाम है। अपना आर्थिक लाभ हर समय सामने रखना, यह वैश्य की मनोवृत्ति है। वैश्य के साथ धर्म नहीं चलता। इसलिए

सृष्टि में आज धर्म गतिमान नहीं है। सारी सृष्टि वैश्य लोगों से भरी पड़ी है। इसी वैश्य वृत्ति की वजह से ऐसा मनुष्य पाठ बेचता है, ऐसा मनुष्य कीर्तन करता नहीं, कीर्तन बेचता है। ऐसा मनुष्य कथा को बेचता है, ज्ञान को बेचता है। नित्य की हुई सेवा को भी बेचता है, किए हुए दान को भी बेचता है।

दे दे मंगहि सहसा गूणा सोभ करे संसारु॥

इसलिए कोई ज्ञानी नहीं हैं, वैश्य हैं। कोई कथा करने वाले नहीं है, वैश्य हैं। कोई कीर्तन करने वाले नहीं है, वैश्य हैं। कोई पाठी नहीं है, वैश्य हैं। कोई दानी नहीं है, वैश्य हैं, व्यापारी हैं। कोई अपना दान बेच रहा है, कोई अपना ज्ञान बेच रहा है। और इन सभी के पीछे आर्थिक लाभ खड़ा है, सिर्फ धन। धर्म कुछ भी नहीं, प्रभुता ही प्रभुता है, पदार्थ ही पदार्थ, धन ही धन है। अगर मनुष्य की वृत्ति में सिर्फ धन ही है, धर्म नहीं है तो ऐसे मनुष्यों के हाथ अगर परमात्मा भी आ जाए तो उन्होंने परमात्मा को भी बेच देना है। एक शायर ने इस बारे यों कहा है:

हवस के बन्दे वफा को बेच देते हैं।
खुदा के घर की क्या कहिए खुदा को बेच देते हैं।

हम देखते हैं कि बेचा जा रहा है कीर्तन, बस मोल चाहिए। बेची जा रही है कथा, मोल चाहिए। बेचा जा रहा है पाठ, मोल चाहिए और जो-जो लोग कहते हैं कि हम सेवा करते हैं, प्रबंधक भी कहते हैं कि हम सेवा करते हैं, दानी भी कहते हैं कि हम दान करते हैं। मगर नहीं, सेवा भी बेची जा रही है, सेवा में भी माँगें हैं—धन की माँग, प्रभुता की माँग, सेहत की माँग और कई प्रकार की माँगें हैं। दान भी बेचा जा रहा है। बाज़ार में मनुष्य ज़रा-से धन की लागत लगा कर अधिक धन की प्राप्ति की आशा करता है। ज़रा-सा दान देकर लाखों करोड़ों की माँग व्यापार है। जैसे मैं पहले अर्ज़ कर चुका हूँ कि बीज का नाश नहीं है। करोड़ों में कोई विरला ही सेवा करता है, विरला ही दान करता है, विरले ही हैं।

कोटि मधे को विरला सेवकु होरि सगले बिउहारी॥

(अंग ४९५)

गुस्ताखी मुआफ, बाकी सभी व्यापारी ही हैं, दान देना ही देना है, लेना कुछ भी नहीं और मन में कोई इच्छा भी नहीं रखनी, ऐसा मनुष्य खिले हुए फूल की तरह हो जाता है। यह फूल फिर खामोशी से महक बाँटता है। ऐसा मनुष्य मन में यही रखता है :

तेरो कीआ तुझहि किआ अरपउ॥

अकबर के दरबारी कवि रहीम को जो मिलता था, सब दान कर देता था। हमें तो गुरु साहिब ने दसवंध निकालने को कहा है। मगर वह तो नौ हिस्से दान कर देता था और एक हिस्सा अपनी उपजीविका के लिए प्रयोग करता था। इतना बड़ा दानी स्वभाव का था। अक्सर ज़रूरतमंद उसके दरवाज़े पर खड़े रहते थे और यह भी किसी को निराश नहीं करता था। यह जब किसी को कुछ देने लगता था तो अपनी आँखें नीचे कर लेता था। किसी ने पूछ लिया कि देने वाले का हाथ ऊपर होता है, नज़रें ऊपर होती हैं, मगर तुम अपनी नज़रें नीचे क्यों कर लेते हो ? आगे से कवि जी ने कहा कि देने वाला तो प्रभु है और लोग मेरा नाम लेते हैं तो शर्म से मेरा सिर, नज़रें झुक जाती हैं।

साईं सभ को देत है, पेखत है दिन रैन।
लोग नामु मेरो लहैं यांते नीचे नैन।

गुरु साहिब मेहर करें, हम कथा-कीर्तन, सेवा, पाठ और दान तो करें मगर नीयत साफ हो। फिर किया हुआ कीर्तन-कथा, सेवा, दान सभी फलीभूत होगा।

बाणी गुरू गुरू है बाणी

समूचे संसार के पास परमात्मा का बोध नहीं है, गुरु का बोध नहीं है। शब्द गुरु है, गुरु शब्द है। शक्ति परमात्मा है, परमात्मा शक्ति है। बाणी गुरु है, गुरु बाणी है:

बाणी गुरू गुरू है बाणी विचि बाणी अंम्रितु सारे॥

(अंग ९८२)

परमात्मा एक शक्ति है, गुरु भी शक्ति है। प्रकाश के रूप में जो परमात्मा है, वह ही शब्द के रूप में गुरु है। करोड़ों में कोई एक दो चार व्यक्तियों के पास परमात्मा का ज्ञान है। यह कोई बड़ी संख्या नहीं:

जन नानक कोटन में किनहू गुरमुखि होइ पछाना॥

(अंग ६८५)

इसलिए धार्मिक दुनिया में धोखा भी बहुत है, छल भी बड़ा है। शायद राजनीतिक दुनिया में भी इतनी ठगी नहीं चलती और कोई राजनीतिज्ञ बहुत लंबे समय तक किसी को ठग भी नहीं सकता। मगर धार्मिक दुनिया में बहुत लंबी ठगी चल रही है और इसका मूल कारण लोगों में ना-समझी है, अज्ञान है, बोध नहीं है। इसलिए कोई जुड़ी हुई आत्मा ढूँढना तो बहुत कठिन है, मगर गली-गली में गुरुओं की भरमार है। उनके दावे पर हैरानी होती है। ऐसे हैं जैसे परमात्मा उनके हाथ का खिलौना हो:

लोगन रामु खिलउना जानां॥ *(अंग ११५८)*

परमात्मा के तल पर मनुष्य बाल-बुद्धि रखता है, समझ नहीं रखता। इसलिए चालाक लोगों ने बहुत बड़ी-बड़ी धर्म के नाम की दुकानें चलाई हुई हैं। धार्मिक दिखाई दे जाना, सिवाय एक शृंगार के अन्य कुछ भी नहीं है। लोग प्रभावित भी हो रहे हैं, देख-देख प्रभावित हो रहे हैं। देही पाँच तत्वों का पुतला है, और यह लोग दावा करते जा रहे हैं

कि गुरु देही है। देहधारी ही गुरु है। गुरु देही है, गुरु देही है। यह वही कहते हैं जो अक्ल के अन्धे, जो तन से ऊँचे नहीं उठ सके, जो अस्थि-माँस नाड़ी के पिंजर से ऊँचा नहीं उठ सके। देही तो मिट्टी की ढेरी है। गुरु नानक देव जी प्रथम पातशाह फुरमान करते हैं, शब्द ही गुरु है:

सबदु गुरू सुरति धुनि चेला॥

गुरु रामदास जी कहते हैं:

बाणी गुरू गुरू है बाणी विचि बाणी अंम्रितु सारे॥

महिमा तो सारी शब्द की है क्योंकि ठाकुर सदैव है, उसके बोल सदैव हैं, और ज्ञान सदैव है। भक्त कबीर जी का फुरमान है:

कहु कबीर मै सो गुरु पाइआ जा का नाउ बिबेको॥

(अंग ७९३)

मुझे उस गुरु की प्राप्ति हुई है, जिसका नाम है ज्ञान। ज्ञान कभी मरता नहीं, हमेशा ब्रह्माण्ड में रहता है। गुरु गोबिंद सिंघ जी भी ज्ञान को गुरु कहते हैं:

गिआन गुरू आतम उपदेसहु नाम बिभूत लगाओ॥

ज्ञान रौशनी है, अज्ञान एक महान् अंधकार है। इसी अंधेरे में निरंकार दिखाई नहीं देता। परमात्मा और परमात्मा का ज्ञान एक साथ ही मिलते हैं। जैसे सूर्य है तो किरणें भी हैं। सूर्य है तो रौशनी है। रौशनी पूरी सूर्य से ही है। इसी तरह परमात्मा शब्द रूप में है, ज्ञान रूप में है। यह बाणी सारी परमात्मा से आई है। यह धुर से फुरमान है, जो प्रभु से सीधी आई है:

धुर की बाणी आई॥ तिनि सगली चिंत मिटाई॥

(अंग ६२८)

यह बाणी सुनकर सभी चिंताएँ मिट गईं। गुरु नानक देव जी भी कहते हैं कि यह तो खसम की बाणी आई है, मेरी नहीं, यह तो नाज़िल हुई है, उतरी है:

जैसी मै आवै खसम की बाणी
तैसड़ा करी गिआनु वे लालो॥ *(अंग ७२२)*

गुरुबाणी ही सर्व-शक्तिमान है, गुरुबाणी ही महां-ज्ञान है, गुरुबाणी ही परमानंद है। महिमा तो सारी शब्द की है, पूजा तो सारी शब्द की है, देह की अकेली बात ही नहीं है। काया को महत्ता दी गई है, इसलिए कि भीतर से ज्ञान प्रगट हुआ है, बाणी प्रकट हुई है। काया का नाम तो नानक था, उस ज्ञान का नाम गुरु था, अगर वह ज्ञान न होता, वह सीधी बाणी न होती तो नानक, नानक थे, गुरु नानक नहीं। ज्ञान को गुरु कहा गया है, काया का नाम नानक है। इसी तरीके से काया का नाम तो लहना था, मगर गुरु नानक के शब्द जो ईश्वर से आए, उसके अंग लगकर अंगद बने तो गुरु अंगद कहलाए। काया का नाम तो अमरदास था और कहने वालों ने तो कह दिया—अमरू निथावां। मगर वह ज्ञान, वह प्रकाश, वह ज्योति जब उनके भीतर प्रवेश कर गई तो बेसहारों के सहारा गुरु अमरदास, निओटियों की ओट गुरु अमरदास हो गए। काया में परमात्मा का नाम उतरा, ज्ञान उतरा, शब्द उतरे तो वही ज्ञान, वही ज्योति फिर आगे स्थानान्तरण की, स्थापित की। वही ज्ञान, वही अक्षर, वही नाम, वही बाणी कागज़ पर लिख कर, छप कर जब प्रगट हुई तो श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी महाराज कहलाए। गुरु नानक ने अपनी मूर्ति की पूजा नहीं करवाई, काया की पूजा नहीं करवाई। जब इस ज्ञान को, इस ज्योति को स्थानान्तरण कर दिया तो अपना मस्तक लहने के कदमों में रख दिया। कल तक लहना गुरु नानक की परिक्रमा करता था, आज गुरु नानक ने अपना मस्तक लहने के कदमों में रख दिया। वह अंग अकाल पुरख के, जो गुरु नानक के भीतर थे, गुरु नानक ने ट्रांसप्लांट कर दिए और दूसरी काया में डाल दिए और अब गुरु नानक भाई लहने की परिक्रमा कर रहे हैं क्योंकि वह ज्योति अब लहने के भीतर आ गई है। दुनिया देख कर दंग रह गई। काम बहुत लंबा था, ढाई तीन सौ वर्ष लगने थे, इसलिए वह ज्योति, नाम बाँटने के लिए काया बदलती रही, मगर ज्योति वही थी :

जोति ओहा जुगति साइ सहि काइआ फेरि पलटीऐ ॥

(अंग ९६६)

जैसे घर बदला, मनुष्य तो नहीं बदला। काया बदली, ज्ञान तो नहीं बदला, विचार नहीं बदले, सिर्फ काया बदली है। इसलिए काया को 'महल' कहा। महला १, महला २, महला ३। इस तरीके से यह परमात्मा का ज्ञान भिन्न-भिन्न काया द्वारा लोगों के घरों तक पहुँचने

का प्रयास किया गया और आखिर में निश्चल घर गुरु ग्रंथ साहिब जी को स्थापित किया गया ताकि जगत् के कोने-कोने तक ज्ञान फैल सके। मनुष्य नाम बाणी से जुड़ सके, गुरु ग्रंथ साहिब जी को विराजमान किया गया। महिमा सारी उस शब्द की है, उस उपदेश की जो अकाल पुरुष से आया। वह सारा ब्रह्म ज्ञान श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में स्थापित किया गया। गुरु ग्रंथ साहिब जी महाराज में निरोल ब्रह्म ज्ञान है। इस में इतिहास नहीं है, पुराण भी नहीं, दुनिया के अधिकतर ग्रंथ इतिहास से भरे हुए हैं या पुराण से भरे हुए हैं। उनमें ज़रा से ही बोल हैं ज़्यादा से ज़्यादा दस प्रतिशत, जो ब्रह्म ज्ञान कहला सकते हैं। अन्यथा ऐतिहासिक प्रसंग मिलते हैं या फिर चुनकर बनाई हुई कहानियाँ मिलती हैं। पौराणिक प्रसंग हैं जो समय और विज्ञान की कसौटी पर पूरे नहीं उतरते। समय जिनको पीछे फैंक दे और विज्ञान की तराज़ू पर जो पूर्ण रूप में तोला न जा सके, ज्ञान जिसको रद्द कर दे, वह बोल वह शब्द ज़िन्दगी के लिए सार्थक नहीं होते, ऊँचा नहीं ले जा सकेंगे। इतिहास कितना ही ऊँचा क्यों न हो, पढ़ते समय ऊँचाई नसीब नहीं हो सकती है। मगर हम उसको ईश्वरीय ज्ञान नहीं कह सकते हैं। एक ही ग्रंथ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी महाराज, जो ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं हैं। कोई गुरु नानक देव जी का इतिहास नहीं मिलता, कोई गुरु अर्जुन देव जी का इतिहास नहीं मिलता। किसी गुरु साहिबान का इतिहास नहीं मिलता। गुरु नानक देव जी के माता-पिता कौन थे, उनकी औलाद कितनी थी, पत्नी का क्या नाम था, बहन का क्या नाम था, आयु कितनी थी, यह गुरु ग्रंथ साहिब जी महाराज में कहीं नहीं मिलता। फिर बना कर चुनी हुई कहानियाँ गुरु ग्रंथ साहिब में नहीं हैं। जैसे पौराणिक ऐतिहासिक ग्रंथों में भिन्न-भिन्न प्रकार का पुराण है। गौतम ऋषि ने क्रोध में आकर गीला अंगोछा मारा और चंद्रमा काला पड़ गया। चंद्रमा में जो काले निशान हैं यह गौतम ऋषि का मारा हुआ गीला अंगोछा है। जिस कारण चंद्रमा में काले धब्बे हैं। अगस्त मुनि जिस की कुटिया समुद्र के किनारे पर थी, लहर आई ज़ोर से, समुद्र में कुटिया बह गई। क्रोधवश होकर ऋषि जी ने अढाई चुल्लियों में पूरे का पूरा समुद्र पी लिया और फिर मल-मूत्र के रास्ते निकाला तो इस तरह से समुद्र खारा हो गया। समुद्र का खारापन, प्राचीन धार्मिक ग्रंथ इस तरह वर्णन करते हैं। सूर्य को

हनुमान ने तीन दिन मुख में डाले रखा और इसके पश्चात् उसने मुख से निकाला। ज़मीन से हज़ारों गुणा बड़ा यह सूर्य और ज़मीन भी उसका एक छोटा-सा टुकड़ा, उस सूर्य को हनुमान ने मुख में डाल लिया। यह तो दो-तीन पौराणिक प्रसंग हैं। ऐसे पौराणिक प्रसंगों से भरे पड़े हैं धार्मिक ग्रंथ। इस तरह ही लंबा चौड़ा पुराण बाईबल में भी मिलता है। बाईबल की कुछ कहानियाँ तो काफी अश्लील हैं, जो भरी सभा में पढ़नी, सुननी और सुनानी मुश्किल हैं। बाईबल ऐसा कहती है कि ईसा से पूर्व कोई चार हजार वर्ष यह सृष्टि अस्तित्व में आई। आज के हिसाब से छः हजार वर्ष हो गए। छः दिन में परमात्मा ने संसार की रचना की और सातवें दिन छुट्टी की। सातवाँ दिन संडे था, रविवार था, सूर्य का दिन था। इसका मतलब सूर्य भी मौजूद था। श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी महाराज संसार की उत्पति के बारे में ख्याल देते हैं, जो समय और विज्ञान की कसौटी पर पूरे उतरते हैं। जपुजी साहिब की बाणी के अंदर गुरु साहिब कहते हैं:

थिति वारु ना जोगी जाणै रुति माहु ना कोई॥
जा करता सिरठी कउ साजै आपे जाणै सोई॥

(अंग ४)

बाईबल तो कहती है कि ज़मीन चपटी है, जबकि विज्ञान सिद्ध कर चुका है कि ज़मीन गोल है। आज बच्चा-बच्चा जानता है कि ज़मीन गोल है। बाईबल कहती है, ज़मीन रुकी हुई है, जबकि सिद्ध हो चुका है और सभी को मालूम हो गया है कि ज़मीन घूम रही है, यह निरंतर चल रही है। श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि सब कुछ चल रहा है, रुका हुआ कुछ भी नहीं है। सूर्य, चाँद, ग्रह, नक्षत्र, ज़मीन, आसमान, सब कुछ चल रहा है:

दिन रवि चलै निसि ससि चलै तारिका लख पलोइ॥
मुकामु ओही एकु है नानका सचु बुगोई॥

(अंग ६४)

गुरु नानक के बोल कि समूह ब्रह्माण्ड गर्दिश में है, चल रहा है, वैज्ञानिक हैं। सृष्टि कब बनी, यह परमात्मा को ही मालूम है:

थिति वारु ना जोगी जाणै

जबकि बाईबल कह रही है, ईसा से चार हज़ार वर्ष पूर्व सृष्टि वजूद में आई। बाईबल में इस तरीके की बेअंत कहानियाँ भरी पड़ी हैं जो विज्ञान की कसौटी पर पूरी नहीं उतरतीं। श्री गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी, प्राचीन और आधुनिक साईंस, विज्ञान की कसौटी पर भी पूरी उतरती हैं, मुकम्मल उतरती हैं। इस ढंग से सभी धर्मों के ग्रंथों में इतिहास, पुराण है और थोड़ा-थोड़ा निरोल ब्रह्म-ज्ञान है। ऐसे कह सकते हैं कि कीचड़ में से रत्न निकाल लें, दूध में से मक्खन निकाल लें, इसके लिए काफी परिश्रम की आवश्यकता है। मगर श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में सिर्फ रत्न ही रत्न हैं, निरोल मोती ही मोती हैं। कोई भी डुबकी लगाए, कोई भी खोज करे, शब्द की गहराई में डुबकी लगा मनुष्य अनिवार्य मालामाल हो जाएगा, निहाल हो जाएगा :

जो प्रभु को मिलबो चहै खोज सबद महि लेहि॥

श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी महाराज ने हज़ूर साहिब में उस परम ज्योति जो अकाल पुरुष से आई बाणी, उसको औपचारिक तौर पर गद्दी प्रदान की, माथा टेका, गुरु ग्रंथ साहिब की परिक्रमा की और हुक्म किया :

सभ सिक्खन को हुकम है गुरु मानिओ ग्रंथ॥

मगर हम देखते हैं सिक्ख जगत् में गुरु ग्रंथ साहिब जी के मुकाबले पर पता नहीं कितने दंभी गुरु पंजाब में और पंजाब से बाहर बने बैठे हैं। सिक्ख जगत् ऐसे पाखंड से और पाखंडियों से बच नहीं सका। ऐसे पाखंडियों के इर्द-गिर्द एजैंट और स्वार्थी एकत्र होते हैं और उनको गुरु रूप में प्रगट कर देते हैं, महान् संत रूप में प्रगट करते हैं। यह सन्त जी हैं, गुरु महाराज जी हैं। ना-समझी की वजह से, अज्ञानता की वजह से भोले-भाले लोग इनकी गिरफ्त में, इनके झांसे में जल्दी आ जाते हैं। इस तरह के अन्धे गुरु, अन्धे जगत् में प्रतिष्ठित किए जाते हैं और इनकी काफी लंबी-चोखी तादाद है। वैसे सिक्खी को आदि काल से भी ले, गुरु अर्जुन देव जी महाराज के मुकाबले पर बाबा पृथी चंद ने गुरु-गद्दी लगा दी थी। बाईस (22) गद्दियाँ गुरु तेग बहादुर जी के मुकाबले पर बाबा बकाला में लग गई थीं। राम राय ने तो गुरु होने का दावा कर ही दिया था। खेल तो सारा शब्द का था, महिमा

तो सारी शब्द की थी, बात तो सारी उस ज्योति की थी, जो धुर-दरगाह से आई थी। बात तो उस बाणी की थी जो धुर से आई थी:

धुर की बाणी आई

मगर यह दंभी गुरु दावे करते हैं कि देही गुरु है, हम गुरु हैं। तो इनका मैंने जवाब देना है, कि देह ही गुरु है कि शब्द गुरु है। जो भोले-भाले लोग इनकी गिरफ्त में आ जाते हैं, उनके लिए मैं सतिगुरु की दी मति अनुसार विचार रख रहा हूँ ताकि वह भटकन से बच जाएँ, उनकी आँखें खुल जाएँ और शब्द-गुरु से जुड़ कर परमात्मा तक पहुँच सकें, प्रभु का रूप हो सकें। देहधारी गुरुओं के अनुयाई, मानने वाले यह तर्क पेश करते हैं कि मानो गुरु ग्रंथ साहिब जी गुरु हैं, मगर जब हम बोलते हैं तो गुरु ग्रंथ साहिब प्रगट होते हैं। व्याख्या हम करते हैं, सुनाते हम हैं तो इसलिए हम अगर गुरु बने हुए हैं तो एतराज़ क्या है, इनकार क्यों? इसका जवाब क्या है? उनको मैं जवाब देता हूँ कि एक अनपढ़ स्त्री है, उसका पति चिरकाल से प्रदेस गया हुआ है, कुछ समय के पश्चात् उसके पति ने अपनी पत्नी को एक चिट्ठी लिखी। पत्नी को चिट्ठी प्राप्त हुई, मगर अनपढ़ थी। पढ़ नहीं सकती थी। पड़ोसी के घर चली गई, कहती है, वीर जी, यह चिट्ठी पढ़ कर सुनाएँ और वह पड़ोसी चिट्ठी पढ़ कर सुनाता है। जिस तरह के संबंध हों वैसे ही संबंधित अल्फ़ाज़ लिखने पड़ते हैं। भाई, भाई को चिट्ठी लिखे तो वह भैया लिखेगा, पिता पुत्र को चिट्ठी लिखेगा तो पुत्र संबोधन करेगा, पुत्र पिता को चिट्ठी लिखेगा तो पिता जी संबोधन करके लिखेगा। और मित्र मित्र को चिट्ठी लिखेगा तो मित्र कह कर लिखेगा। इसी तरह पति पत्नी को चिट्ठी लिखेगा तो पत्नी कहकर संबोधन करेगा और यह चिट्ठी जो पड़ोसी पढ़ने लगा है, पति ने अपनी पत्नी को लिखी है। पड़ोसी पढ़ता है—मेरी प्रिय पत्नी, वह हामी भरती है। इस तरह चिट्ठी में जैसे लिखा है, पड़ोसी पढ़ता है, मेरी प्रिय पत्नी। इन अक्षरों को तो सुनती जाती है, और हामी भी भरती जाती है। चिट्ठी पढ़ने वाले को कहीं यह भ्रम हो जाए कि मैं कह रहा हूँ मेरी पत्नी, मेरी प्रिय पत्नी और यह आगे से हामी भर रही है और इससे उस को भ्रम हो जाए और दावा करे कि तुम मेरी पत्नी हो और मैं तेरा पति हूँ। अगर

चिट्ठी पढ़ कर पति होने का दावा करे, उससे बड़ा दुराचारी कौन है? उससे बड़ा गुनाहगार कोई नहीं। अकाल पुरुष की बाणी पढ़कर सुनाने वाला मनुष्य, गुरु नानक की बाणी पढ़कर सुनाने वाला मनुष्य गुरु होने का दावा करे, उससे बड़ा कोई पाखंडी नहीं है। गुरुबाणी सुना रहा है, व्याख्या कर रहा है, दूसरे हामी भर रहे हैं, रस आ रहा है, आनन्द आ रहा है, मगर चिट्ठी किसी और की है, यह बाणी अकाल पुरुष की है, उससे आई है। गुरुबाणी सुना कर, गुरुबाणी की व्याख्या कर कर के गुरुबाणी का ही कीर्तन करके फिर गुरु हम हैं। आसरा लेना गुरुबाणी का, मगर गुरु हम हैं, शेर की खाल पहन कर गीदड़ कहे कि मैं शेर हूँ। सहारा गुरुबाणी का ही लेते हैं। अर्थ गुरुबाणी के ही करते हैं, पर गुरुबाणी से जोड़ने की बजाए जोड़ अपने साथ ही लेते हैं। सुनाते गुरुबाणी हैं, मगर गुरु खुद को कह रहे हैं। तेरा धन्यवाद, तूने पढ़ कर सुनाया, मगर तुम तो पति होने का दावा कर रहे हो, गुरु होने का दावा कर रहे हो। एक उपदेशक उपदेश कर रहा है, श्रोता सुन रहे हैं तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि उपदेश को हृदय में बसाना है कि उपदेशक को। अगर कहें कि उपदेशक को हृदय में बसाना है तो सुनने की ज़रूरत ही नहीं और अगर उपदेश को हृदय में बसाना है तो उपदेशक खुद दूसरे दर्जे में आ जाता है और बात तो सारी उपदेश की है। गुरु अर्जुन देव जी सुखमनी साहिब की बाणी में कहते हैं:

सुनि उपदेसु हिरदै बसावहु॥
मन इछे नानक फल पावहु॥ *(अंग २९३)*

सुन उस उपदेश को, जो परमात्मा से संदेश के रूप में आया है। बहुत सुन्दर नाम दिया है खुद को मुहम्मद साहिब ने—पैगम्बर, मैं तो घर-घर पैग़ाम पहुँचाने वाला हूँ। जैसे पोस्टमैन घर-घर चिट्ठी पहुँचाता है। मैंने जगत् को खुदा का पैग़ाम देना है, पोस्टमैन हूँ। नम्रता से भरा हुआ यह शब्द है। गुरु गोबिंद सिंघ जी कहते हैं:

जो निज प्रभ मोसो कहा सो कहि हो जग माहि॥

जो कुछ प्रभु ने मुझे कहा है, सो मैं जगत् को कह रहा हूँ। गुरु नानक देव जी भी ऐसा ही कह रहे हैं:

जैसी मै आवै खसम की बाणी
तैसड़ा करी गिआन वे लालो॥

इससे यह बात स्पष्ट हो गई कि अवतारों के पास परमात्मा की चिट्ठी होती है, परमात्मा के ही बोल होते हैं, परमात्मा का दिया हुआ सीधा ज्ञान होता है। गुरु नानक देव जी बाणी में इस तरह भी कहते हैं कि मैं तो कुछ नहीं जानता, जो मुझे सुनाई दिया, जगत् को कह रहा हूँ:

हउ आपहु बोलि न जाणदा मै कहिआ सभु हुकमाउ जीउ ॥

(अंग ७६३)

जो प्रकाश के रूप में परमात्मा है, यह शब्द के रूप में गुरु है, मगर देहधारी गुरु, शब्द को गुरु मानने को तैयार नहीं, देही गुरु है। हम ही गुरु हैं। और भोले-भाले लोग विशेषकर ग्रामीण लोग तो बहुत ही भोले हैं क्योंकि मैं जिस-जिस ग्राम में जाता हूँ लोग इन देहधारी गुरुओं के पीछे बहुत लगे हुए हैं। एक सज्जन एक दफा मुझे कहने लगा, हमारे गुरु की बहुत महानता है, आप चाहे जो मर्ज़ी कहो। मैंने कहा क्या महानता है ? एक-आध मुझे भी बताओ। आगे से कहने लगा कि वह मंत्र कानों में देते हैं, गुप्त देते हैं। मैंने कहा, मंत्र तो कान ही सुनेंगे, कोई मुख-मस्तक थोड़े सुनेगा, शब्द तो कान ही सुनेंगे। कहता है, इस ढंग से तो हमने कभी सोचा ही नहीं तो मैंने कहा अगर सोच लेता तो तूने राधा स्वामी बनना था, तू तो मनुष्य बन जाता। यह तो दिमाग को ताले लगाए और झूठ के पुजारी बन गए। एक अन्य सज्जन ने जब कहा कि मंत्र कानों में देते हैं तो अनाहद ध्वनि गूँजने लगती है तो मैंने उससे पूछा क्या वाकई ही तुम्हारे कानों में अनाहद की ध्वनि गूँजने लगी थी ? कहता जब उन्होंने दो-चार दफा कोई मंत्र कानों में पढ़ा तो पूछने लगे तो कानों में वैसे ही साँय-साँय हो रही थी। मैंने भी कह दिया कि हाँ अनाहद की ध्वनि सुनाई दे रही है। दिल्ली की रामलीला ग्राऊँड में एक दंभी गुरु की पूजा करने वाले अंध-विश्वासियों ने अपने बनावटी गुरु को करंसी नोटों से तोला और बड़ा प्रचार किया। उनका ही मानने वाला एक अंध-विश्वासी मुझे कहने लगा, देखो हमारे गुरु की महिमा, नोटों से तोले गए हैं। मैंने पूछा कितने नोट थे ? कहने लगा, कोई तेरह लाख के करीब करंसी नोट थे। मैंने उसको फिर जवाब दिया कि तेरे गुरु की कीमत मात्र तेरह लाख रुपये ? तराजू इसलिए बना दी गई कि दो पल्लों को बराबर किया जाए। जब करंसी नोटों का चलन नहीं था, तब वस्तुओं के बदले वस्तुएँ दी जाती थीं। एक

छाबे में सब्ज़ी रख दी, दूसरे में फल रख दिए, एक छाबे में चने रख दिए, दूसरे में गेहूँ। दोनों पल्ले इस तरह बराबर होते थे। मैंने कहा एक पल्ले में तेरह लाख नोट, दूसरे पल्ले में आप का गुरु, दोनों पल्ले बराबर हो गए। तुम्हारे गुरु की कीमत सिर्फ तेरह लाख। दुनिया की सारी दौलत भी एकत्र करें, गुरु ग्रंथ साहिब की एक पंक्ति का भी मोल नहीं, नज़राना हो सकता है, मोल नहीं। दूसरा सारी दुनिया में जहाँ जहाँ भी गुरु ग्रंथ साहिब जी का प्रकाश है और जो धन भेंट होता है, एक दिन में गुरु ग्रंथ साहिब जी के चरणों में उसकी गणना करना मुश्किल है। दूसरा जो खुद को तुलवाने को राज़ी हो सकता है, वह संसारी हो सकता है, धनवान हो सकता है, लोभी हो सकता है, कोई राजनीतिज्ञ हो सकता है। कभी गुणवान मनुष्य, परमात्मा से जुड़ी हुई आत्मा ने खुद को धन से नहीं तुलवाया। नज़राने के रूप में रखा जा सकता है, कदमों में रखा जा सकता है, उसको तौला नहीं जा सकता। धन उसकी बराबरी नहीं कर सकता, एक और तर्क भी यह लोग करते हैं कि यह जो कहा जाता है कि:

जागत जोत जपै निस बासुर एक बिना मन नैक ना आने॥

खालसा तो वह है जो जागत ज्योति को माने, मगर समूचा जगत् कागज़ की पूजा कर रहा है। पत्थर जड़ है, कागज जड़ है। नहीं बोलता पत्थर, नहीं बोलता कागज़। मुझे कहने लगा, क्या आप ऐसा स्पष्ट कर सकते हो कि कागज़ चेतन है? मैंने कहा, कागज़ चेतन है, ऐसा तो मैं नहीं स्पष्ट कर सकता, मगर हम कागज़ के पुजारी हैं, ऐसा आपका कहना गलत है। मैंने एक उदाहरण उनको भक्त रविदास जी की बाणी में से दी, भक्त जी फुरमाते हैं:

तर तारि अपवित्र करि मानीऐ रे जैसे कागरा करत बीचारं॥

प्राचीन काल में कागज़ ताड़ के पेड़ से बनता था और प्राचीन ग्रंथ उस कागज़ पर लिखे जाते थे। यह कागज़ हाथों से बनाए जाते थे और ताड़ के बुरादे के। शास्त्रकारों ने ताड़ के पेड़ को अपवित्र कहा है क्योंकि इसमें से जो रस निकलता है, उसमें शराब जैसा ही नशा है, जिसको पी कर लोग अचेत होते हैं। इसलिए धार्मिक विद्वानों ने अपवित्र कहा है। रविदास जी कहते हैं:

तर तारि अपवित्र करि मानीऐ रे जैसे कागरा करत बीचारं॥

(अंग १२९२)

अगर ताड़ का पेड़ अपवित्र है, उससे बना हुआ कागज़ भी अपवित्र है, मगर :

भगति भागउतु लिखीऐ तिह ऊपरै पूजीऐ करि नमसकारं॥

जब भगवान की महिमा, परमात्मा का नाम और ज्ञान उस कागज़ पर लिख दिया जाता है, लोग सिजदा करते हैं, माथा टेकते हैं, कागज को माथा नहीं टेकते, कागज पर लिखे हुए नाम को माथा टेकते हैं। हम अखबार पढ़ते हैं, उठाकर फैंक देते हैं। अनेक किताबों को पढ़कर एक तरफ रख देते हैं। 1430 पन्नों की बीड़ हो, जिस में एक भी अक्षर न लिखा हो। बुद्धिमान सिक्ख उसको माथा नहीं टेकेगा चाहे पालकी में प्रकाश हो क्योंकि सिक्ख उन अक्षरों का पुजारी है, जिस में परमात्मा का नाम है, परमात्मा का ज्ञान है और जो ज्ञान और जो अक्षर सीधे परमात्मा से आए हैं, ईश्वर से आए हैं। जैसे अक्षर लिखें होने की वजह से कागज़ का सम्मान है, पूजा है। वास्तव में वही अक्षरों की, नाम की और ज्ञान की पूजा है। ज्ञान अनन्त है, गुरु अनन्त है, परमात्मा अनन्त है। प्रकाश के रूप में जो परमात्मा है, शब्द के रूप में वही गुरु ही है। शब्द के रूप में जो गुरु है, वही परमात्मा है।

नानक सोधे सिम्रिति बेद॥ पारब्रहम गुर नाही भेद॥

(अंग ११४२)

व्यापक है गुरु, व्यापक है परमात्मा। शब्द के रूप में गुरु सदा संग है, प्रकाश के रूप में परमात्मा सदा संग है :

गुरु मेरै संगि सदा है नाले॥

एक बात प्रत्यक्ष है, जो सदा संग नहीं, परमात्मा नहीं। जो सदा संग नहीं, गुरु नहीं। सदा संग, मनुष्य से परिवार नहीं होता, मित्र नहीं होते, बेटियाँ, बेटे और रिश्तेदार सदा संग नहीं हो सकते मगर :

गुरु मेरै संगि सदा है नाले॥

परमात्मा :

सदा अंग संगे अभंगं बिभूते॥

क्योंकि वह सर्वव्यापी है :

तू सभनी थाई जिथै हउ जाई साचा सिरजनहारु जीउ ॥

(अंग ४३८)

जो देहधारी गुरु को मानते हैं और अगर कोई उनको मुसीबत पड़ जाए, पहले तो वहाँ तक फरियाद ही नहीं पहुँचती और अगर समाचार उसको मिल जाए और वह चलने की तैयारी भी कर लें तो उसके पहुँचते-पहुँचते चाहे दूसरे का अन्त ही हो जाए। देहधारी गुरु एक जगह पर हो सकता है, प्रत्येक जगह पर नहीं। एक मनुष्य एक समय में एक जगह पर तो हो सकता है, मगर सर्वत्र नहीं हो सकता। गुरु अर्जुन देव जी महाराज ने जिस दिन हरिमंदिर साहिब में गुरु ग्रंथ साहिब जी महाराज का प्रकाश करवाया था, उसी दिन संगतों को कथा-कीर्तन श्रवण करवाई थी। भाई साहिब भाई संतोख सिंघ जी, गुरु अर्जुन देव जी के ख्यालों को, विचारों को कलमबद्ध करते हैं। गुरु महाराज जी ने कहा कि यह जो मेरा शरीर है, इसके तुम सर्वत्र दर्शन नहीं कर सकते, मेरा शरीर यहाँ पर है, मगर दूसरी, तीसरी जगह पर एक ही समय में नहीं है। कवि जी लिखते हैं:

सतिगुरु कै सरीर है जोऊ
सभ थान समय सभ ना दरसै हैं।

क्योंकि शरीर व्यापक नहीं है तो महाराज ने वहाँ हुक्म किया कि गुरु ग्रंथ साहिब को गुरु का दिल और दिमाग जानना ही उत्तम है, क्योंकि यह सभी काल रहे हैं। मेरा शरीर आज है और कल नहीं, फिर और गुरु ढूँढोगे, सारी ज़िन्दगी गुरुओं को ही ढूँढते रहोगे। हर समय रहने वाले हैं गुरु ग्रंथ साहिब जी। गुरु जी के विचारों को कवि जी ऐसे वर्णन करते हैं:

ग्रंथ रिदा गुर को इहो जानो, उत्तम है सभ काल रहे हैं।

अगली पंक्ति में स्पष्ट हुक्म कर दिया है:

मेरे सरीर ते या ते हैं दीरघ साहिब जान अदाइब कहे हैं।

भाव मेरे शरीर से गुरु ग्रंथ साहिब जी को बड़ा जानना, क्योंकि मैं खुद इस ग्रंथ को माथा टेकता हूँ, सिजदा करता हूँ। सो जिस शब्द को गुरु अर्जुन देव जी माथा टेकते हैं, जो रब्बी कलाम आप जी ने मुखारबिंद से उच्चारण किए थे, उनको खुद सिजदा करते हैं, जिस कलाम को गुरु नानक साहिब भी गुरु कहते हैं:

सबदु गुरू सुरति धुनि चेला ॥

जिस बाणी को गुरु रामदास जी भी गुरु कह रहे हैं **'बाणी गुरू गुरू है बाणी'** इस बाणी को आगे चलकर पूरी रस्म और मर्यादा से गुरु गोबिंद सिंघ जी ने गुरुगद्दी प्रदान की, गुरु ग्रंथ साहिब जी को माथा टेका और परिक्रमा की और कहा:

सभ सिखन को हुकम है गुरु मानिओ ग्रंथ।

गलीए चिकड़ु दूरि घरु

एक मार्ग ऐसा है, जिस पर हमारा शरीर चलता है। एक मार्ग ऐसा है जिस पर हमारी सुरति चलती है। सुरति को इन्द्रियों की गलियों में से निकलना पड़ता है। जब भी ध्यान किसी इन्द्रिय से सम्मिलित होता है तभी वही इन्द्रिय सही काम करती है। परन्तु इन इन्द्रियों की गलियों में तो बहुत कीचड़ भरा पड़ा है, जिसमें से गुजरना बड़ा कठिन है। सदियों पहले भी इन गलियों में से गुजरना कठिन था, आज उससे भी अधिक कठिन है। समय के बहाव से यह कीचड़ बढ़ा है, और बढ़ता ही जा रहा है। काश! यह कीचड़ बाहर होता तो इस बाहर के कीचड़ में से पार होना आज के वैज्ञानिक युग में कोई कठिनाई नहीं थी। आँखों में पर-धन, पर-तन का कीचड़ है, कानों में पर-निंदा, चुगली और अपनी उपमा सुनने का कीचड़ है। रसना में भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थों के स्वाद की लालसा और मिथ्या बोलने का कीचड़ है, चमड़ी में स्पर्शता व नासिका गंध-सुगन्धि के कीचड़ से भरी पड़ी है। इन गलियों में समय के चक्र से कीचड़ बढ़ता ही जा रहा है व इन गलियों को साफ करना दिन-ब-दिन कठिन होता जा रहा है, मगर सत्संग के प्रताप की वजह से प्रभु-मिलन की लालसा है। तड़प चलने पर मजबूर करती है, पर चलते हुए सुरति कीचड़ से भर जाती है:

फरीदा गलीए चिकड़ु दूरि घरु नालि पिआरे नेहु॥
चला त भिजै कंबली रहां त तुटै नेहु॥ २४॥

(अंग १३७९)

प्रभु का घर दूर है, इन्द्रियों की पहुँच से परे है, **'चला त भिजै कंबली'**, सचमुच चलने से सुरति कीचड़ से लथपथ होगी। प्रभु नाम का जाप करना चलना है, मगर जाप करते समय तो पर-तन, पर-धन और समस्त इन्द्रियों का कीचड़ सम्मुख आ जाता है और ध्यान उसमें

लथपथ होकर रह जाता है। यह बहुत बड़ी सच्चाई है, जब भी मनुष्य निरंकार को याद करना चाहता है तो संसार की याद आती है। परमात्मा को स्मरण करने बैठे तो पदार्थ याद आते हैं। संसारिक पदार्थों की वासनाओं का इतना प्रबल कीचड़ है कि सुरति फँस कर ही रह जाती है। कई जिज्ञासुओं ने मुझे कहा कि मसकीन जी, आगे पीछे तो हम ठीक होते हैं मगर जब भी सिमरन करने बैठें, पाठ करने बैठें तो गलत विचार चलने शुरू हो जाते हैं। मैं उनको कहता हूँ कि आगे पीछे भी ठीक नहीं होते। वास्तव में पहले हम रुके होते हैं, इसलिए कीचड़ विघ्नकारी प्रतीत नहीं होता, चलने पर ही पता चलता है कि इन गलियों में से गुजरना बहुत कठिन है। जो चला ही नहीं है, वह इस मार्ग की मुश्किलों को नहीं समझ सकता। हर जिज्ञासु ने इन मुश्किलों का रोना रोया है। जपना कठिन हो जाता है। बाणी पढ़नी कठिन हो जाती है:

आखणि अउखा साचा नाउ॥

यहाँ अब एक साहस करना पड़ेगा, दृढ़ संकल्प कर लिया जाए कि जपना ही है, सिमरन करना ही है, बाणी पढ़नी ही है, चाहे निरंकार न भी याद आए, संसार ही याद आए, पदार्थ ही याद आएँ। चाहे करतार को याद करते विकार याद आएँ, तो भी रुकना नहीं है, चलना है, जपना है, चाहे सुरति विकारों के कीचड़ में लथपथ हो, रुकना नहीं:

भिजउ सिजउ कंबली अलह वरसउ मेहु॥
जाइ मिला तिना सजणा तुटउ नाही नेहु॥ २५॥

(अंग १३७९)

इस तरह चलते-चलते इन कीचड़ भरी गलियों में से निकल जाना है। जपते-जपते एक दिन पदार्थों की जगह पर परमात्मा स्मरण आने लगता है। विकारों का चिंतन थक जाता है और निरंकार का चिंतन चल पड़ता है, परमात्मा के आगे साथ-साथ अरदास करते रहो। चलना मत छोड़ो, जप जारी रखो और फिर एक दिन गुरु-कृपा से अचानक यह घटना घट जाती है, प्रभु-सिमरन का प्रवाह चल पड़ता है, विषय-वासना की जगह पर प्रभु सिमरन चल पड़ता है, मगर हिम्मत की ज़रूरत है। इन कीचड़ों में से गुज़रने के लिए दृढ़ इरादा, दृढ़ संकल्प करके चलते रहें, चलते रहें, चाहे कंबली कीचड़ से लथपथ होती है तो कोई परवाह नहीं। चाहे ध्यान पर-तन, पर-धन व पदार्थों में जा रहा है, कोई

बात नहीं। अरदास करते रहो, जपते रहो, चलते रहो, एक दिन गुरु-कृपा से पहुँच जाओगे। कीचड़ की दलदल में से बचने का, निकलने का एक रास्ता है, व्यक्ति लेट जाए तो दलदल में फँसने से बच जाता है। अगर जोर से हाथ-पैर मारे तो दलदल खुद में गर्क कर लेती है। गुरु के आगे लेट जाएँ, अरदास करते रहें, गुरु जी कृपा करेंगे इस कीचड़ में से, इस दलदल में से निकाल देंगे, बचा लेंगे। इस कीचड़ से, दलदल से पार कर देंगे और पार पहुँच कर प्रभु का मिलाप हो जाएगा और नेहु और मजबूत हो जाएगा। जो कभी टूटता नहीं है:

जाइ मिला तिना सजणा तुटउ ना़ही नेहु॥

(अंग १३७९)

कर्म-II

(दुख-सुख का बीज कर्म)

कर्म की ज़िम्मेवारी सिर्फ मनुष्य पर लागू होती है, क्योंकि मनुष्य एक समझदार प्राणी है। पशु समझ से विहीन है। उससे जो कुछ भी होता है प्रकृति करवाती है। मनुष्य जो कुछ भी करता है, अपनी बुद्धि अनुसार करता है। जब कर्म का कर्त्ता यही है तो फिर भोक्ता भी यही है। कर्म बीज है, दुख-सुख फल हैं। जीवन के पेड़ के ऊपर दुखों के फलों को देखकर यह कहना पड़ेगा कि बीज गलत बोए गए हैं। गलत बीज दुख ही पैदा करेगा। इस विषय का गुरुबाणी अनुसार खुलासा कर रहा हूँ ताकि मनुष्य सही बीज बोकर सुखों का फल प्राप्त कर सके।

धर्म की दुनिया में कर्म की बहुत चर्चा है। हम इसको ही पढ़ने और समझने की कोशिश करते हैं।

करमी करमी होइ वीचारु॥ सचा आपि सचा दरबारु॥

वह प्रभु सच्चा है, उसका दरबार सच्चा है, उसका न्याय सच्चा है। उससे कोई बेइन्साफी नहीं होती। कोई दबाव डालकर उसका फैसला बदला नहीं जा सकता। कुछ लालच देकर उसकी कलम तोड़ी नहीं जा सकती। कोई अन्य किसी प्रकार का लोभ-लालच रख कर उसके फैसले को, उसके इरादे को न मोड़ा जा सकता है, न तोड़ा जा सकता है। इसीलिए कहते हैं वह अटल है, उसका न्याय अटल है। वह खुद सच्चा है, उसका न्याय सच्चा है, शेष दुनिया के बारे में तो मेरी पूरी जानकारी नहीं, मगर भारत के बारे में मेरी जानकारी है। वहाँ तो अगर पैसे है तो इन्साफ खरीद लो, अगर ताकत है तो इन्साफ छीन लो। अगर ताकत नहीं है इन्साफ छीनने की और पैसा नहीं है इन्साफ खरीदने के लिए तो इन्साफ मुफ्त में वहाँ किसी को नहीं मिलता। हैं तो बहुत

से देश ही इसी तरह, वैसे नाम की ही होती है अदालत। 'अदल' कहाँ मिलता है? इन्साफ कहाँ मिलता है?

सचा आपि सचा दरबारु॥

परमात्मा खुद सच्चा है, उसका दरबार सच्चा है। उसके दरबार में क्या होता है?

'करमी करमी होइ वीचारु॥'

उसके दरबार में कर्मों का विचार होता है। मनुष्य की शक्ल-सूरत का नहीं, मनुष्य के कर्मों का विचार होता है। इस विचार को मैं आगे चलाऊँ। जिस धरती पर हम रहते हैं, दो तरह की दुनिया धर्म ने मानी है। एक है भोग-भूमि और दूसरी है कर्मभूमि। एक वह जीव हैं जो सिर्फ जीवन व्यतीत करने के लिए ही आए हैं। निद्रा कर लेना और शरीर की ज़रूरतों की पूर्ति कर लेनी, बस पशु जगत्। मनुष्य को कहा गया है, यह भोग-भूमि के साथ-साथ कर्मभूमि है। यह भोगने के साथ-साथ कुछ करने के लिए आया है। इसलिए साहिब कहते हैं:

करम भूमि महि बोअहु नामु॥ *(अंग १७६)*

मनुष्य कर्मभूमि है, पशु भोग-भूमि है। पशु अपने कर्म अनुसार विकास नहीं कर सकता। प्रकृति अपने स्वभाव के मुताबिक उसको आगे चलाती है। यों कह लो पशु का विकास प्राकृतिक है, परमात्मा की मर्यादा अनुसार है। वह मर्यादा क्या मनुष्य के साथ काम नहीं करती। काम करती है, मनुष्य के साथ स्वतंत्र मर्यादा काम करती है, यहाँ इनको स्वतंत्रता दे दें। तुम्हारी मर्ज़ी है तूने क्या करना है। मनुष्य को कर्म की रियायत दे दी गई है। इस कर्मभूमि में:

जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेतु॥ *(अंग १३४)*

जैसा-जैसा तुम बीज बोओगे, वैसा-वैसा तुम्हारी झोली में फल पड़ेगा। तुम्हें धरती दी है और बीज बोने की तुम्हें स्वतंत्रता दे दी, तुम कर्म करो। शुभ कर्म करके सुखों से अपनी झोली भर लो। जो कुछ तुम ने जगत् में से प्राप्त करना है, कर लो, तुम्हें स्वतंत्रता है, तुम्हें धरती दी है। तूने केसर बोना है कि नीम बोना है? तूने जौं बोने हैं कि चने बोने हैं? तूने अंगूर की बेलें लगानी हैं या बबूल के बीज बोने

हैं, यह तुम्हारी मर्ज़ी है। मगर एक दफा बीज तूने बो दिया तो बोने के पश्चात् तुम्हें ख्याल आए, मैंने तो आम के पौधे लगाने थे, लगा बैठा हूँ बबूल के। अच्छा परमात्मा मुझसे भूल हो गई है, इन बबूल को ही आम लगा दे, नहीं लगेंगे, ऐसा नहीं होगा। यह उसका नियम नहीं है, बाबा फ़रीद जी कहते हैं:

फरीदा लोड़ै दाख बिजउरीआं किकरि बीजै जटु॥
हंढै उंन कताइदा पैधा लोड़ै पटु॥ *(अंग १३७९*

लगाता पौधे बबूल के, माँगता है आम। चरखे में कातता तो ऊन है और माँगता रेशम है। ऐसा हुआ है कभी? बीज मनुष्य दुखों के बोता है और माँगता सुख है। जब इसको सुख मिलता नहीं तो गिले से भर जाता है और गिला इतना बढ़ जाता है कि कह देता है, कोई परमात्मा नहीं, कोई ईश्वर नहीं।

अहिरख वादु न कीजै रे मन॥
सुक्रितु करि करि लीजै रे मन॥ *(अंग ४७९)*

गिला क्यों करता है, शुभ कर्म कर और सुख हासिल कर ले। उस सच्चे के दरबार में सच है, वह कर्मों के अनुसार ही फैसला करता है। महात्मा बुद्ध ने जहाँ तक ऐलान कर दिया कि भगवान की फिक्र बाद में करना, कर्म की फिक्र पहले करना। यहाँ हिन्दुस्तान के ब्राह्मणों ने महात्मा बुद्ध को नास्तिक कह दिया। अभी तक भी ब्राह्मण समाज उसको नास्तिक कहता है। इतने बड़े वक्त के अवतार पुरुष को नास्तिक क्यों कहा गया है, क्योंकि उसने अपने भिक्षुओं को कहा रब की फिक्र बाद में करना, पहले कर्म की फिक्र करना क्योंकि उसने भी फैसला कर्म के मुताबिक करना है। अगर कर्म के मुताबिक ही फैसला उसने करना है तो तुम्हें फिक्र करने की इतनी आवश्यकता नहीं, तुम कर्म की फिक्र करो, बौद्ध भिक्षुओं में एक ही वाक्य प्रचलित हो गया, कर्म ही भगवान है। श्री गुरु नानक देव जी फुरमान करते हैं:

जितु कीता पाइऐ आपणा सा घाल बुरी किउ घालीऐ॥
(अंग ४७४)

अगर तुमने अपना किया पाना है तो अपने कर्त्तव्य के प्रति सुचेत हो जा। मनुष्य होगा सुचेत, मगर अपने कर्मों के प्रति सुचेत नहीं है। अगर कर्मों के प्रति सुचेत होता तो इतना दुखी न होता। दुनिया इतनी

दुखी न होती, कहते हैं वायु व्यापक है, आसमान व्यापक है, दुख भी व्यापक है। जहाँ तक आकाश फैला हुआ है, वहाँ तक दुख है, जहाँ तक पवन झूल रही है, वहाँ तक दुख भी झूलते हैं। मानवता दुखी है, कोई पशु दुखी नहीं, कोई पक्षी दुखी नहीं, कोई कीड़ा-मकौड़ा दुखी नहीं। पशु सुख में जी रहे हैं, देवते आनन्द में जी रहे हैं, दुख मात्र मानव की दुनिया में है, साहिब को जहाँ तक कहना पड़ा :

बाली रोवै नाहि भतारु॥
नानक दुखीआ सभु संसारु॥ *(अंग १५४)*

मानव जगत् पूरे का पूरा दुखी है। पशु जी रहा है आवश्यकता के तल पर और मनुष्य जी रहा है ख्वाहिशों के तल पर। ख्वाहिशें पूरी न हो, मनुष्य तड़पता है। ख्वाहिश पूरी तो कोई-कोई होती है। होती वह भी कर्मों के अनुसार ही है। कुछ सन्तों-महन्तों के डेरे भी ऐसे ही चल पड़ते हैं। जगत् में उन साधु-सन्तों की बन आती है जो कह देते है कि लो धागे-ताबीज बना देते हैं, तुम्हारा काम हो जाएगा। लोग खुश हो जाते हैं, भई फकीर अच्छा है, यह महान् सन्त है। अगर उसने सौ व्यक्तियों को धागे दिए तो उनमें से कुछ की अपनी प्रारब्ध की वजह से बात बनने वाली होती है और जब उनकी बात बन जाती है और फिर वह और सैकड़ों व्यक्तियों को भेजते हैं भई हमारे घर लड़का तो बाबे (सन्तों) के आशीर्वाद से हुआ है, अमुक सन्तों के धागे से हुआ है। अब कौन बताए, जिन्होंने धागे ताबीज नहीं लिए, क्या उनके घर लड़के नहीं हुए, कौन पूछे कि बाबे ने तो प्रत्येक को धागे ताबीज दिए, क्या प्रत्येक के घर लड़के हो गए ? नहीं, जिनके कर्मों में थे, अपनी-अपनी प्रारब्ध के मुताबिक समय पर, जब वक्त आया, उनका जन्म हुआ। वह डेरे न भी जाते तो भी बात बन जानी थी। बस, पाखण्ड इसी तरह चलता है, अज्ञान के आसरे पर। सो पूरी मानवता दुखी है। ख्वाहिशें इतनी ज़्यादा हैं, कर्म अच्छे हैं नहीं, सभी ख्वाहिशें किस तरह पूरी हों, कतई नहीं पूरी होती। मगर कोई ख्वाहिश अपने कर्म के मुताबिक पूरी हो भी जाती है तो वह आगे दस और ख्वाहिशों को जन्म दे जाती है और इस तरह फिर हज़ारों ख्वाहिशें साथ लेकर दम निकलता है और मनुष्य पूरी ज़िन्दगी दुखी जीवन ही व्यतीत करता है।

मानवता की झोली में इतने दुख देखकर ख्याल आ जाता है, कहीं गलत बीज तो नहीं बोए गए। पेड़ को लगे कड़वे फल देख कर बीज की पहचान होती है कि गलत बीज बोए गए। आधुनिक विज्ञान बीज में वृक्ष देखने में, बीज में फल देखने में सफलता हासिल कर चुका है। बीज में फल देखने में सफल हुआ है वैज्ञानिक और कर्मों में से फल देखने में सफल हुआ है सन्त, भक्त। उसको नज़र आया है कि कर्मों के इस बीज में से दुख निकलेगा, इस बीज में से सुख निकलेगा। अगर कोई दुखी है तो इससे स्पष्ट हुआ कि कोई गलत बीज बोया गया है। अगर दुख है तो फिर परमात्मा कसूरवार नहीं, तुम्हारे किए बुरे कर्म ही कसूरवार हैं। फ्राईड ने कहीं कह दिया कि 60 प्रतिशत बीमारी पैतृक होती है। माँ को कोई रोग था, आगे औलाद को हो गया। पिता को कोई रोग था आगे पुत्र को हो गया। फ्राईड ने ऐसा कह दिया कि तुम्हारे शारीरिक रोगों के लिए तू जिम्मेवार नहीं, तुम्हारे माता-पिता जिम्मेवार हैं। उस वक्त जर्मनी के एक प्रसिद्ध डाक्टर ने ऐसा कहा था कि दुनिया में इस किस्म के जितने रोगी इन्सान हैं, उनसे औलाद पैदा करने का अधिकार छीन लेना चाहिए। अन्यथा दुनिया में रोगी ही रोगी होंगे। अभी इसका असर यूरोप में नई युवा पीढ़ी पर पड़ ही रहा था और माता-पिता का सम्मान कम होना शुरु हो गया था, इस ख्याल से कि कार्ल मार्क्स ने एक और चोट कर दी कि तुम्हारी आर्थिक मुश्किलों के लिए समाज जिम्मेवार है, तुम जिम्मेवार नहीं। अब मेरी आर्थिक आवश्यकताओं के लिए समाज जिम्मेवार है। मेरे शारीरिक रोगों के लिए माता-पिता जिम्मेवार हैं, मैं तो फिर स्वतंत्र हो गया। मेरा तो कोई कसूर ही नहीं, फिर तो हर व्यक्ति बेकसूर हो गया। गुरु ग्रंथ साहिब जी महाराज की रौशनी में फ्राईड के ख्यालों को लें, कार्ल मार्क्स के ख्यालों को लें। साहिब कहते हैं, माता-पिता भी दोषी नहीं, समाज भी दोषी नहीं। फिर कौन दोषी है ?

ददै दोसु न देऊ किसै दोसु करंमा आपणिआ॥
जो मै कीआ से मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना॥

(अंग ४३३)

तुम्हारे दुखों के लिए तुम्हारे कर्म दोषी हैं। तुम्हारे दुखों के लिए तू जिम्मेवार है। बस इतनी-सी बात याद रख। तुम्हारा हर कर्म एक बीज है, अपने कर्म के प्रति तुम सावधान हो जाओ, क्योंकि परमात्मा

ने तुम्हें बीज बोने की स्वतंत्रता दी है। वह बीज तुम्हें परमात्मा ने स्वतंत्र रूप में दिए हैं। रसना तुम्हारे पास है, तेरी मर्ज़ी है तू सच के बीज बो, चाहे झूठ के। मिठास के बीज बो चाहे कड़वाहट के। हाथ तुम्हारे पास हैं। चाहे गलत करो, चाहे ठीक करो। पैर तुम्हारे पास हैं, चाहो तो गलत तरफ चले जाओ, चाहो तो ठीक तरफ। कहते हैं, जीवन मनुष्य के पास है, जन्म और मृत्यु मनुष्य के पास नहीं। जन्म और मृत्यु की घटना परमात्मा के पास है, मगर जीवन की बात परमात्मा ने हमें दी है। भई जीना तूने कैसे है चुनाव कर ले, तुम्हारी मर्ज़ी है। परन्तु जन्म और मृत्यु में तुम्हारी मर्ज़ी नहीं। जन्म और मृत्यु के बीच का सफर जीवन है और जीवन में कर्म करने की स्वतंत्रता परिपूर्ण परमात्मा ने दे दी है। देखो, ईख में मीठापन परमात्मा ने डाल दिया है, रस डाल दिया है। मगर अब हमारी मर्ज़ी है कि उसकी शक्कर बनानी है या उसका गुड़ बनाना है या उसकी शराब बनानी है। यह हमारी इच्छा है। अंगूरों में रस है, हमारी मर्ज़ी है कि उसका गुलूकोज़ बनाना है या शराब बनानी है। किस ढंग से हमने अंगूरों का, ईख का इस्तेमाल करना है, यह हमारी मर्ज़ी है। तूने क्या करना है, यह चुनाव तुम कर सकते हो, मगर जब तूने चुनाव कर लिया, फिर फल तुम्हारे हाथ में नहीं है। फिर मेरी मर्ज़ी है, मैंने शराब पीनी है या अमृत पीना है अगर मैंने अमृत पी लिया तो उसका फिर अपना असर है, अगर मैंने शराब पी ली तो उसका फिर अपना असर है। शराब मैं भरपूर पी लूँ और कहूँ नशा न चढ़े, यह नहीं हो सकता। विष का प्याला मैं पी लूँ और कहूँ, मैं बरकरार रहूँ, जिन्दा रहूँ, ऐसा नहीं हो सकता। कर्म मैं गलत करूँ और कहूँ मैं सुखी रहूँ, ऐसा नहीं होगा। कोई भी कर्म करो लेकिन इतनी बात याद रखो कि तुम्हारा प्रत्येक कर्म एक बीज है और अगर सुख चाहते हो तो शुभ कर्म करो। अगर तूने बुरे कर्म किए तो जीवन भर दुख ही मिलेंगे। परमात्मा का नियम, विधान अटल है। उसको अपने विधान में संशोधन नहीं करना पड़ता। अपने कर्म के प्रति तुम सावधान होवो। आगे कर्म भी तीन प्रकार के हैं : शारीरिक कर्म, मानसिक कर्म और वाचक कर्म। जो मैंने शरीर से किया, अच्छा या बुरा, वह शारीरिक कर्म। जो मैंने ज़ुबान से किया अच्छा या बुरा वाचक कर्म और जो

मैंने मन से सोचा अच्छा या बुरा मानसिक कर्म। इन तीनों ही तरह के कर्मों से निकलते हैं सुख और दुख। दुख हैं तुम्हारे पास, किसी को दोषी ठहराने की आवश्यकता नहीं, तुम्हारे शारीरिक कर्म ठीक नहीं होंगे या तुम्हारे वाचक कर्म ठीक नहीं होंगे या तुम्हारे मानसिक कर्म ठीक नहीं होंगे। इसका मैं ज़रा-सा खुलासा कर दूँ, मैं इस हाथ से किसी के घर को आग लगाऊँ, यह शारीरिक बुरा कर्म है। मैं ज़ुबान से किसी को प्रेरित करूँ कि तू अमुक के घर को आग लगा दे, यह वाचक बुरा कर्म है। अगर मैं मन से ही सोचता रहूँ कि इसका घर जल जाना चाहिए, यह मानसिक बुरा कर्म है। इस तरीके से मैंने हाथों से कुछ शुभ किया, दान दिया, सेवा की, यह शारीरिक शुभ कर्म हैं। मैंने ज़ुबान से पाठ किया, मीठे बोल बोले, जोड़ने वाली बात की, यह वाचक शुभ कर्म हैं। मैं मन से सारा दिन शुभ ही सोचता रहा, सब का भला ही चाहता रहा, यह मानसिक शुभ कर्म है। इन कर्मों से ही संस्कारों का पौधा पैदा होता है। संस्कारों के पौधे को स्वभाव के बहुत घने फल लगते हैं। इन्हीं स्वभाव के पत्तों में से प्रारब्ध के फूल निकलते हैं, इन्हीं फूलों से दुख और सुख के फल निकलते हैं। यह संख्या ऐसे है दुख है तो प्रारब्ध ठीक नहीं क्योंकि स्वभाव ठीक नहीं, स्वभाव क्यों विपरीत है ? क्योंकि संस्कार बुरे हैं, क्यों बुरे हैं ? क्योंकि कर्म ठीक नहीं, बात आखिर कर्मों पर ही आती है। यहाँ तो :

जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेतु॥

शेख़ सायदी, एक सूफी फकीर, एक दफा उसका एक दोस्त उसके पास गया कि साँई तुम मेरे हक में दुआ कर दो कि खुदा से मुझे भी सुख मिले। जैसे कई अरदास करवाते हैं, ग्रंथी सिंघ से। कई बचकाने लोग यह भी कह देते हैं कि हुआ क्यों नहीं अब तक मेरा काम ? यह गुरु पर हुक्म करने के लिए आते हैं, हुक्म मानने के लिए नहीं। जो दोस्त आया शेख़ सायदी के पास, समझदार था। अक्सर इतने बड़े चिन्तक का दोस्त था, बुद्धिमान तो होगा ही। शेख़ सायदी साहिब कहने लगे कि दुआ तो मैं कर दूँगा, मगर तुम्हारे किए हुए कर्मों का इलाज कोई नहीं, यह तो भोगने ही पड़ेंगे। बड़ा कीमती शे'र है, इस फकीर का :

यार रा ख़ुद करदा रा इलाज नेस्त।

जो तू कर चुका है, इसका कोई इलाज नहीं।

करदनी ख़्वाहिश-ओ आमदनी पेस्त।

जो तुम कर चुके हो उसको कबूल कर ले। प्रभु का नियम अटल है उसके नियम को बदला नहीं जा सकता। मित्र बात समझने वाला था, समझ गया। सामान्य लोग इस स्तर के नहीं होते। सामान्य लोग फिर गिला परमात्मा से करते हैं। हे रब, यह तूने क्या किया ? परमात्मा बिल्कुल निष्पक्ष है। परमात्मा ने कुछ भी नहीं किया, जो कुछ भी किया तुम्हारे कर्मों ने किया। भक्त त्रिलोचन जी अपनी बाणी में कहते हैं:

नाराइण निंदसि काइ भूली गवारी
दुक्रितु सुक्रितु थारो करमु री॥ *(अंग ६९५)*

यह जो दुख-सुख हैं, यह तुम्हारे दुक्रित सुक्रित की वजह से हैं। परमात्मा की निन्दा क्यों ? कर्म अमिट है, नहीं मिटता। इस मामले से निराश भी हो सकते हैं कई, मगर यह एक सच्चाई है। भक्त जी इस शब्द की अंतिम पंक्तियों में कहते हैं वह आगे। स्त्री के भीतर माँ बनने की भावना परमात्मा ने प्रबल रूप में डाली हुई है। अगर गोद हरी नहीं हुई, स्त्री माँ नहीं बनी या किसी कारण माँ नहीं बन सकी तो मनोचिन्तक ऐसा कहते हैं, इस कारण 90 प्रतिशत स्त्रियों का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। भक्त त्रिलोचन जी की पत्नी की गोद हरी नहीं हुई थी और वह चिड़चिड़े स्वभाव की हो गई थी, परमात्मा से गिले बढ़ गए थे। एक दिन खीझ कर कहने लगी, क्या रखा है इस परमात्मा में, दिन-रात गीत गाते रहते हो, घर को आपने मंदिर बना रखा है। यह तो घर है, प्रत्येक समय साधु-सन्त टिके रहते हैं। त्रिलोचन के घर यही कुछ होता था। सन्तों के घर अब सन्तों ने ही आना था, प्रत्येक समय कथा कहानी ही चलती थी। सन्तों को देख कर वह सन्तों की और परमात्मा की निन्दा करने लग गई। होगा महान्, दयालु, कृपालु परमात्मा, मगर हमारे लिए तो औलाद का फल भी कोई नहीं, तो भक्त जी ने कहा:

नाराइण निंदसि काइ भूली गवारी
दुक्रितु सुक्रितु थारो करमु री॥ *(अंग ६९५)*

यह तो तुम्हारे अपने कर्मों का फल है। आगे से पत्नी कहती है जिस परमात्मा के पीछे चलने से यह कर्म मिटते नहीं तो उसके पीछे रोज़ाना खपने का क्या मतलब है? अगर नाम जप कर भी कर्म नहीं मिट सकते आपके और मेरे तो क्या करना इस नाम को? इस सत्संग को। यह सभी एक तरफ करो। शब्द की अंतिम पंक्तियाँ:

पूरबलो क्रित करमु न मिटै री
घर गेहणि ता चे मोहि जापीअले राम चे नामं॥

'घर गेहणि' का भाव घरवाली, पूरबला कर्म नहीं मिटता, किसी कीमत पर नहीं मिटता, चाहे कितना भी नाम जप लें, चाहे कितनी बन्दगी कर लें।

ता चे मोहि जापीअले राम चे नामं॥

तो ही मैं राम का नाम जपता हूँ। हद हो गई, जब कर्म ही नहीं मिटता तो नाम जपने का क्या मतलब? जपने का एक मतलब है। जब कर्मों की मार पड़ती है तो व्यक्ति उसकी रज़ा में राज़ी रह जाता है, खुश हो जाता है। उसका हुक्म अच्छा लगता है प्यारा लगता है। जब डाक्टर आप्रेशन करता है तो शरीर को सुन्न कर लेता है। वैसे तो छोटी-सी सुई लगे तो तड़पेगा, परन्तु अब बड़े-बड़े चाकू लगते हैं, नश्तर चलते हैं, उसको कुछ नहीं हो रहा। सुरति नाम में लग गई है, चाहे कितने दुख आ जाएँ, कितने सुख आ जाएँ, उनसे कोई मतलब नहीं रह जाता। सुरति बड़ी ऊँची हो जाती है, परन्तु दुख कर्मों के मुताबिक आते हैं मगर दुख महसूस नहीं होते। यह यथार्थ ज्ञान है। यह आम व्यक्तियों की बात नहीं। आठों प्रहर भजन की मूर्ति स्वामी रामकृष्ण उनके गले में कैंसर हो गया था, कुछ खा नहीं सकते थे। सिर्फ तरल, पानी पी लेते थे, दूध पी लेते थे। यह हालत उनकी चार-पाँच वर्ष रही है। एक दिन उनकी पत्नी ने कह दिया कि परमात्मा के आगे प्रार्थना कर लो, अरदास ही कर लो। मालूम है स्वामी जी ने क्या कहा, कहते इसका मतलब है उसको मालूम नहीं मेरे कैंसर का? वह अज्ञानी है। वह तो 'विणु बोलिआ सभु किछु जाणदा' दुख की निवृति के लिए भक्त प्रार्थना नहीं करते। उनको नज़र आता है, कुछ बोया था, उग आया है। वह तो कहते हैं कुछ कर्म ऐसे हैं जो अब खाने हैं।

आपि बीज आपे ही खाहि॥

सन्त बाबा अतर सिंघ जी, भजन की मूर्त्ति, ब्रह्म-ज्ञान की मूर्त्ति, साँप ने उन्हें काटा, खैर शरीर तो बच गया, जान तो बच गई, मगर जहर का कुछ ऐसा असर हुआ कि पैर फूलने लगा और उसमें घाव होने लगा। घाव ठीक न हुआ तो बाबा अतर सिंघ जी को सिंघों ने कहा, महाराज अकाल पुरख के आगे अरदास कर लें। तो मालूम है मूल वचन क्या निकले, कर्म मेरा और धोने के लिए गुरु को कहूँ, बस इतना कहकर चुप हो गए। रमजी आदमी नहीं समझे उनकी रमज कहने का ढंग।

पानी, मानो कि किसी बड़े सरोवर में है। उस बड़े सरोवर के पानी को थोड़ी-सी जगह में अगर एकत्र करना हो तो पानी गहरा ज्यादा हो जाएगा, गहरा हो जाएगा। दुख बड़े लम्बे समय तक भोगने हों तो फिर छोटे-छोटे दुख चलते ही रहते हैं। वर्षों छोटे-छोटे दुख चलते ही रहते हैं। मगर वही दुख पंद्रह दिनों या महीने में भोगने हों तो (जो वर्षों में भोगने थे) तो दुख बड़ा गहरा हो जाता है। भक्तों का दुख नाम जपने की वजह से जल्दी खत्म हो जाता है, और गहरा हो जाता है। साधारण व्यक्ति के भीतर बहुत दफा शंका पैदा हो जाती है कि साँस-साँस नाम जपने वाला व्यक्ति इतना दुख में, इतनी पीड़ा में। कौन बताए जो दुख साधारण व्यक्ति ने कई वर्षों में, कई जन्मों में भोगने हैं, इन्होंने कुछ दिनों में ही बात खत्म करनी हो तो इसे कह दिया जाता है कि दुख तो सपने में व्यतीत हो गया। जो बात हम कई दफा सपने में आठ-दस मिनटों में देख लेते हैं, उसको असल जाग्रतावस्था में गुज़रने के लिए कम-से-कम 10-12 वर्ष लगते हैं। दुख बढ़ जाते हैं उनकी निवृत्ति के लिए भक्त प्रार्थना नहीं करते। दूसरा अगर वह किसी भी प्रार्थना से मिट सकता है तो इसका मतलब परमात्मा का विधान मिटाया जा सकता है, उसके नियम को तोड़ा जा सकता है। नहीं, त्रिलोचन जी कहते हैं कि तेरा नियम भी अटल है। हे पत्नी, पूरबला कर्म नहीं मिटता, भोगना पड़ता है। अनिवार्य भोगना पड़ता है। यह बात अलग है कि नाम जपने वालों के दुख परमात्मा सपने में

गुज़ार दे, जैसे डाक्टर शरीर को सुन्न कर के औज़ारों से आप्रेशन करता है परन्तु मरीज़ को कोई पता नहीं चलता। इसी तरह परमात्मा का नाम जपने वालों को सुख-दुख से ऊँचा कर देता है। उनको दुख का पता ही नहीं चलता, परन्तु कर्मों के मुताबिक दुख भोगा भी जाता है।

एक सज्जन ने तो मुझे यहाँ तक भी कह दिया था कि इन कर्मों के रोने ने तो भारत वासियों को बड़ा सुस्त बना दिया है। इस प्रारब्ध के रोनों ने तरक्की करने की हिम्मत नहीं दी। मुझे उसने एक दलील दी कि एक किसान के पास 10 एकड़ ज़मीन हो और दूसरे के पास भी इतनी ही हो। जो पहला किसान है वह दो दफा हल चलाए, सुहागा फेरे और पानी भी दे, बढ़िया बीज बोए, हर तरह का श्रम करे। प्राकृतिक बात है। फसल बहुत अच्छी और लहलहाता हुआ खेत होगा और जो दूसरा किसान है, वह कम श्रम करे, एक दफा हल चलाए, सुहागा भी न फेरे और जितना ज़रूरी है, उतना पानी भी न दे और बीज भी बढ़िया न हो और फिर अगर फसल कम हो और प्रारब्ध का इस में रोना क्या है ? इस में किस्मत का क्या मतलब ? परमात्मा को आगे करने की क्या आवश्यकता है ? यह तो पुरुषार्थ की बात है, उद्यम की बात है, श्रम की बात है। मुझे कहने लगा कि इस दलील का आपके पास कोई जवाब है ? मैंने कहा बात इस तरह है, जिसने बढ़िया बीज बोया, सुहागा फेरा, पानी भी अनुकूल दिया और फसल पकने पर आई तो पकी फसल पर ओले पड़ गए, हासिल कुछ भी नहीं हुआ। जिसने बीज घटिया बोया, पानी भी पूरा नहीं दिया, कम श्रम किया, उसको फिर भी कुछ फसल मिल गई। मैंने पंजाब में ही ऐसा कई बार देखा है, सुना है, और हैरानी मुझे होती है। एक खेत ओलों से नष्ट हो जाता है, और दूसरा बच जाता है। मैंने उसको कहा इसे क्या कहोगे ? कहने लगा, यह तो प्राकृतिक बात हुई। मैंने कहा, आप इसको प्राकृतिक बात कह लो, हम इसी को प्रारब्ध कह देते हैं, बात तो एक ही है। मात्र श्रम की बात नहीं। उद्यम और भाग्य से धन मिलता है। गुरु साहिब बाणी में फुरमाते हैं :

भाग उदिम लबध्यं माइआ॥ *(अंग १३५६)*

उद्यम करना परम-धर्म है परन्तु भरोसा प्रारब्ध पर रखना है। उद्यम तो करना है, श्रम तो करना है, मगर मिलना तो तुम्हें अपने कर्मों के मुताबिक ही है। बारामूला में एक सिंघ मेरे पास आकर फूट-फूट रोने लगा और बताने लगा कि मैंने सेब के बाग लिए थे, पूरा एक वर्ष बहुत खर्च किया, बहुत श्रम किया, व्यक्ति रखे निगरानी के लिए ताकि कोई पक्षी सेब न खराब कर जाए, पूरी तरह ध्यान रखा, परन्तु अब वक्त आया तो इतने ओले पड़ गए कि सारे के सारे सेब खराब हो गए। मैंने कर्ज़ लेकर रकम लगाई थी, भई घर का खर्च निकलेगा, मगर अब तो मेरे पास कर्ज़ वापिस करने को पैसे नहीं हैं, मैं तो ऋणी हो गया हूँ। अब इसको प्रारब्ध नहीं कहोगे तो क्या कहोगे? यह सभी कर्मों का खेल है।

सो पूरबला कर्म नहीं मिटता। दुख-सुख अपने कर्मों के मुताबिक ही मिलते हैं और भोगने पड़ते हैं। अगर बाजरा बोया है तो बाजरा ही काटना पड़ेगा, बबूल के पौधे लगाए हैं तो आम नहीं मिलेंगे। आम अगर तुम्हें चाहिए तो तू आम के पौधे लगा। अगर तुम्हें गुरु ने स्वतंत्रता दी है तो सावधान होकर कर्म करो, अधिकतर कह देते हैं कि जब परमात्मा नाम जपाएगा तो जप लेंगे। जब गुरु चाहेगा तो नेक काम कर लेंगे। जब गुरु चाहेगा, अमृतपान कर लेंगे। इसका मतलब अभी गुरु चाहता है कि बुरे काम कर, तुम अमृत न पान करो। अमृत समय न उठो। नाम न जप। बहुत से शराब पीने वाले कह देते हैं कि जब गुरु छुड़ाएगा, तब छोड़ देंगे। इसका मतलब अभी तुझे गुरु कहता है तू पी, सुबह भी पी और शाम को भी पी, यह भ्रम है।

तुम शुभ कर्म करो जिससे तुम्हें सुख प्राप्त हो। अशुभ कर्म न करो जिससे तुम्हें दुख प्राप्त हो। शुभ-अशुभ कर्म क्या है? वही शुभ कर्म है जो दूसरों के लिए भी शुभ हो, और जो कर्म मेरी सुरति को गति दे परमात्मा के मार्ग पर। जिस कर्म से दूसरों को चोट पहुँचे दूसरों का नुक्सान हो, किसी को चोट पहुँचे, दूसरों के कदम रुक जाएँ, यह सभी अशुभ कर्म हैं। अगर तूने किसी को रुलाया है तो तुम्हें भी रोना पड़ेगा। जो तुम कर चुके हो, तुम्हारे सम्मुख आएगा। और भोगने के लिए तैयार हो जाओ। ईश्वरीय नियम है। गुरु साहिब जी कहते हैं:

जितु कीता पाइऐ आपणा सा घाल बुरी किउ घालीऐ॥

(अंग ४७४)

सो शुभ कर्म करो, सावधान होकर कर्म करो और गुरु के आगे अरदास करो कि अच्छी बुद्धि दे ताकि शुभ कर्म के बीज बो सकें।

हारि परिओ सुआमी कै दुआरै दीजै बुधि बिबेका॥

(अंग ६४१)